सोमसी

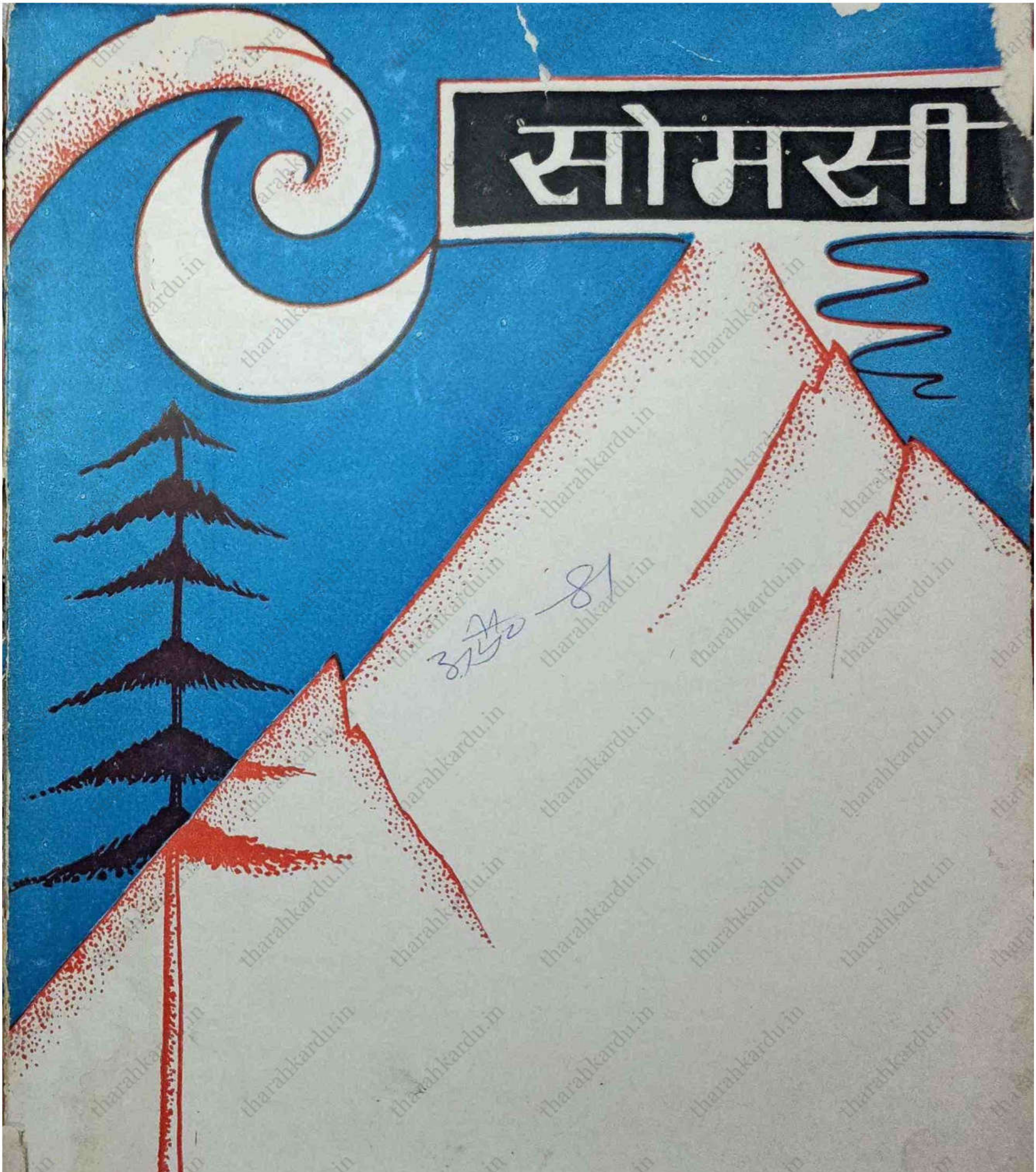

हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला-2

सोमसी

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी का त्रैमासिक मुख-पत्र

वर्ष 7 | अप्रैल, 1981 | अंक 2

मुख्य सम्पादक :
अध्यक्ष अकादमी
शिव कुमार उपमन्यु

सम्पादक :
मौलू राम ठाकुर

सहयोगी :
सरोज सांख्यायन

आवरण :
ओम प्रकाश

२६

जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य।

लेखक के विचारों तथा दिए गए तथ्यों से सम्पादक की सहमति आवश्यक नहीं।

प्राप्ति स्थान :

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी,
पीच ब्लाज्म काटेज, शिमला-171002

विषयानुक्रमणिका

क्रम संख्या	लेख	लेखक	पृष्ठ
1.	सम्पादकीय		*(i)*
2.	पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और हिमाचली पहाड़ी	–डॉ० मनोहर लाल	1
3.	संसार का सबसे पुराना जनपद-मलाणा	–श्री देसराज डोगरा	8
4.	मण्डियाली के बन्धुतावाचक संज्ञापद (किन्शिप नाउन्ज़)	–डॉ० जगतपाल शर्मा	12
5.	बन्नी एक मौन पृष्ठ	–श्री प्रेम कुमार शर्मा	17
6.	गांव रिवाड़ी (कुल्लू) के सन्त स्व० रामलाल शर्मा	–श्री ठाकुर दत्त शर्मा 'आलोक'	21
7.	कांगड़ा जनपद का प्रसिद्ध लोक-संगीत 'सुहाग'	–श्रीमती विमला कुठियाला	24
8.	हिमालय का चितेरा–रोरिक	–श्री देवदत्त कालिया	39
9.	कांगड़ा के जन्म-संस्कार गीत	–श्रीमती राजरानी शर्मा	41
10.	कांगड़ी लोक गीत 'पखड़ू' संक्षिप्त परिचय	–श्री शेष अवस्थी	48
11.	यशपाल के उपन्यास पार्टी कामरेड की नारी 'गीता'	–केहर सिंह 'मित्र' भूम्पलवी	51
12.	बूभणी	–पन्ना लाल जोगटा	58
13.	हिमाचल प्रदेश इतिहास : प्राचीन रियासत गुलेर के संस्थापक : राजा हरिश्चन्द्र	–डॉ० श्रीकान्त 'प्रत्यूष' गुलेरी	67
14.	भारत सरकार आकाशवाणी शिमला हिमाचल के किले : रोमांच और इतिहास	–प्रो० चन्द्र वर्कर	69
15.	हिन्दी के द्वितीय प्रेमाख्यान, दाऊद रचित चान्दायन के आधार स्रोत	–डॉ० सुशील कुमार 'फुल्ल'	73
16.	कांगड़ी कविता : एक सर्वेक्षण एक दृष्टि	–डॉ० गौत्तम शर्मा व्यथित	80
17.	गीत, नाटक एव नृत्य क्षेत्र में अकादमी की गतिविधियां	–श्री अशोक हंस	92
18.	पुस्तक समीक्षा-हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास	–श्री अश्विनी कुमार अवस्थी	95

सम्पादकीय

१९६६ में पंजाब का पुनर्गठन नितान्त भाषायी आधार पर हुआ था। स्पष्ट ही उस समय के राजनैतिक निर्णय ने हिमाचल प्रदेश में सम्मिलित क्षेत्रों की भाषायी स्वतन्त्रता और एकता के लम्बे इतिहास को पुष्ट किया। डॉ० ग्रियर्सन ने १८९४ में आरम्भ किए भारतीय-भाषा-सर्वेक्षण में यहां की पृथक भाषा को पश्चिमी पहाड़ी कह कर इसे पंजाब, हरियाणा, उत्तर प्रदेश और कश्मीर की भाषाओं से स्वतन्त्र माना था जिसे बाद के भाषा-शास्त्रियों ने स्वीकार किया और पंजाब पुनर्गठन अधिनियम ने विद्वानों के मत को राजनैतिक, प्रशासनिक और न्यायिक प्राधिकार प्रदान किया। वस्तुतः विद्वानों की राय कागज़ों तक सीमित रहती है जब तक इसे प्रशासनिक प्राधिकार प्राप्त नहीं होता। इसलिए भले ही इस क्षेत्र की बोलियों को १८८१ से अलग भाषा का समूह माना जाता रहा, परन्तु उसे पूर्ण स्वीकृति एक सौ वर्ष के बाद प्राप्त हुई।

अब आलोचकों की यह धारणा विचारणीय है कि जिसे पहाड़ी के समर्थक पहाड़ी भाषा कहते हैं वह ऐसी बोलियों की खिचड़ी है जो एक-दूसरे को समझ नहीं आतीं। यहां मूलतः दो विवेच्य विषय हैं—एक यह कि हिमाचल में बोलियों की संख्या अत्यधिक है और दूसरे यह कि ये बोलियां एक-दूसरे के लिए बोध-गम्य नहीं हैं। यहां सर्वप्रथम यह बात स्पष्ट हो जानी चाहिए कि हमारे सामने हिमाचल प्रदेश की भारतीय आर्य-भाषा का प्रश्न है जो प्रदेश के प्रमुख भाग में बोली जाती है न कि लाहुल-स्पिति और किन्नौर की आस्ट्रिक भाषाएं जो संविधान में ही जन-जातीय भाषाओं के रूप में स्वीकृत है और उसी रूप में भारत की अनेक जन-जातीय भाषाओं की तरह विवेचित हैं। अतः यह कहना कि जन-जातीय क्षेत्र की भाषाएं हिमाचल के अन्य क्षेत्रों में समझी नहीं जाती और इसलिए हिमाचल प्रदेश की कोई एक भाषा नहीं है, न्यायोचित और नीतिसंगत नहीं है। भारतीय सभ्यता और संस्कृति में जन-जातीय भाषाओं का अपना अलग महत्व और स्थायित्व है। वे प्रधान-भूभाग की भाषाओं के साथ कहीं टकराव में नहीं आतीं। उनके विकास-प्रसार के लिए अलग ही प्रावधान है।

अपने भारतीय-भाषा-सर्वेक्षण में डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत नौ बोलियों और २८ उप-बोलियों का उल्लेख किया है। यथा—(१) जौनसारी (२) सिरमौरी तीन उप-बोलियां (३) बघाटी दो उप-बोलियां (४) क्योंथली सात उप-बोलियां (५) सतलुज समूह दो उप-बोलियां (६) कुलुई तीन उप-बोलियां (७) मण्डियाली तीन उप-बोलियां (८) चम्बयाली चार उप-बोलियां और (९) भद्रवाही तीन उप-बोलियां। इनमें से उत्तर प्रदेश के जौनसर बाबर की जौनसारी तथा जम्मू कश्मीर प्रदेश के भद्रवाह क्षेत्र की भद्रवाही और उसकी तीन उप-बोलियां वर्तमान हिमाचल प्रदेश के क्षेत्र में नहीं पड़ती। डॉ० ग्रियर्सन ने कांगड़ी और कहलूरी को पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत नहीं माना था तथा वर्तमान प्रशासनिक विभाजन के अनुसार हिमाचल प्रदेश में संख्या की दृष्टि से नौ ही बोलियां रह जाती हैं। डॉ० ग्रियर्सन द्वारा निर्धारित बोलियों और उप-बोलियों की संख्याओं को उन्हीं दिनों की परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में देखना चाहिए। डॉ० ग्रियर्सन ने अपने

सर्वेक्षण के लिए प्रशासनिक इकाइयों को बोलियों का आधार माना है। तब भारत वर्ष अनेक छोटी-छोटी रियासतों और जिला इकाइयों में विभक्त था। यों भी डॉ० ग्रियर्सन की प्रवृत्ति विभाजित करो और शासन करो की नीति के ही अनुकूल अधिक से अधिक भाषाएं गिनाने की प्रवृत्ति रही है। उनके भाषा सर्वेक्षण में भारत की १७६ भाषाओं और ५४४ बोलियों का वर्णन है। इनमें भी मद्रास और उस समय के हैदराबाद एवं मैसूर राज्यों की भाषाओं का ब्यौरा शामिल नहीं है। इन १७६ भाषाओं को हम अब केवल १५ भाषाओं के रूप में संविधान की आठवीं अनुसूची में पाते हैं।

हिमाचल के सन्दर्भ में बोलियों की अतिशयोक्ति का अनुमान इसी बात से लगाया जा सकता है कि डॉ० ग्रियर्सन कुम्हारसेन के दक्षिणी भाग की बोली को साथ लगते बड़ा गांव की बोली से भिन्न मानते हैं क्योंकि बड़ा गांव शांगरी रियासत का भाग था और दूसरा कुम्हारसेन रियासत का। उनके अनुसार मूल जुब्बल क्षेत्र की बोली बिशाऊ है परन्तु उसके उत्तरी भाग की बोली बराड़ी है। कुल्लू में सेंज नदी के क्षेत्र की बोली को सेंजी कह कर उसे सिराजी और कुलुई से अलग माना है। उनके अनुसार सुन्दरनगर की बोली मण्डियाली से भिन्न है क्योंकि सुकेत और मण्डी अलग-अलग रियासतें थीं और इन दोनों से भिन्न बल्ह क्षेत्र की उप-बोली पृथक ही थी।

आज मोटे और समूचे रूप से पहाड़ी भाषा के अन्तर्गत हिमाचल प्रदेश में सात प्रमुख बोलियां मानी जा सकती हैं—सिरमौरी, महासुई, कुलुई, मण्डियाली, चम्बयाली, कांगड़ी और बिलासपुरी। बिलासपुरी और मण्डियाली को भी अलग कहना उचित नहीं है। फिर भी एक भाषा के लिए सात बोलियां अधिक नहीं है। वस्तुतः जिस भाषा सर्वेक्षण में डॉ० ग्रियर्सन ने पश्चिमी पहाड़ी के अन्तर्गत नौ बोलियां या २८ उप-बोलियां गिनाई हैं, उसी भाषा सर्वेक्षण में उन्होंने मराठी की ३६, गुजराती की ४२ और बंगला की असंख्या बोलियां कह कर उल्लेख किया है। परन्तु चूंकि उस समय मराठी, गुजराती और बंगला में साहित्य सृजन हो रहा था अतः साहित्य ने उनकी विभिन्न बोलियों को एक रूप में संजो और संवार कर प्रमुख भाषा के रूप में हमारे सामने ला खड़ा किया है। वस्तुतः भाषा के क्षेत्र में साहित्य एक ऐसा हथियार है जो अनेकता को एकता में समेकित करता है। केवल साहित्य ने पंजाबी को अत्यन्त अल्प अवधि में राज्य भाषा के रूप में विकसित किया है। भारत की सभी भाषाओं का इतिहास इस बात का साक्षी है कि बोली लिखित रूप में आकर भाषा का रूप धारण करती है और लिखित साहित्य भाषा की भिन्नता को समानता का रूप प्रदान करता है। पहाड़ी में अब साहित्य लिखा जाने लगा है। अब तक सौ से अधिक पुस्तकें लिखी जा चुकी हैं। इन पुस्तकों का क्रमिक रूप ही इस बात का साक्षी है कि पहाड़ी की विभिन्न बोलियों में भिन्नता तेज़ी से समाप्त हो रही है। पिछले दस-बारह वर्षों में पहाड़ी की विभिन्न बोलियों के कवि एक मंच पर कविता-पाठ करते हैं तो श्रोता हर कवि की कविता का रसास्वादन करते हैं। कवि-सम्मेलन के मंच ही यह प्रमाण प्रस्तुत करते हैं कि पहाड़ी की कोई बोली नहीं है जिसे समझा बूझा न जाता हो। कवि-सम्मेलनों और अब तक के लिखित साहित्य ने इस बात को स्पष्ट कर दिया है कि आलोचकों की यह धारणा है कि पहाड़ी की बोलियां एक-दूसरे को समझ नहीं आतीं, निर्मूल और निराधार हैं।

—एम०आर० ठाकुर

पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी और हिमाचली पहाड़ी

—डॉ० मनोहर लाल

संस्कृत के प्रकांड पंडित चन्द्रधर शर्मा गुलेरी स्वदेश, स्व-संस्कृति तथा स्व-भाषा प्रेमी थे। वे संस्कृत तथा हिन्दी के अनेक स्वनाम धन्य पंडितों की तरह देश-भाषा के अनुभव से कटे-कटे तथा दूर-दूर रहने वाले नहीं थे। वे अनेक भाषाओं के धुरंधर पण्डित थे। गुलेरी जी के निबन्धों तथा कहानियों को पढ़ने से ज्ञात हो जाता है कि वे अपनी कलम के संग-संग गूढ़ शास्त्रीय विषयों तथा कथा प्रसंगों को लिए चलते थे। यह उनके भाषा, व्याकरण तथा भाषा शास्त्र (रूखे विषय भी) पर सच्चा अधिकार होने का ही परिणाम है कि वे हिन्दी जगत को 'पुरानी हिन्दी' जैसी पुस्तक तथा पुनः शेष की कहानी, वाजपेयी, राजसूय, अश्वमेघ, चाणूर, रंध्र, देवकुल, शैशुनाक मूर्तियां, पंचमहा-शब्द, श्री श्री श्री श्री, अशोक की धर्म लिपियां, छट्ट, यन्त्रक, बनारसी ठग, रड्डा छन्द तथा अमंगल के स्थान में मंगल शब्द जैसे गूढ़ निबन्ध दे गए। यही कारण है कि आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इनकी अनूठी लेखशैली, प्रसंग गर्भत्व के कारण फूटने वाली चुटकियों, अभिव्यंजना शैली की विशिष्टता अर्थ गर्भित वक्रता तथा बहुज्ञता की भूरी-भूरी प्रशंसा की है।[1]

गुलेरी जी भाषाविद् थे। इतिहास, दर्शन, ज्योतिष, पुरातत्व, भाषा-विज्ञान तथा साहित्य के साथ-साथ उनका संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, बंगला, मराठी तथा अंग्रेजी भाषाओं पर समान अधिकार था। फ्रेंच, लैटिन तथा जर्मन भी वे जानते थे। गुलेरी जी की भाषा-शक्ति के विषय में डा० नगेन्द्र ने लिखा है—सबसे अधिक आश्चर्यजनक है गुलेरी जी की भाषा। ऐसी प्रौढ़ भाषा उस समय तो कोई लिख ही क्या सकता था, गद्य के समुन्नत युग में भी कोई लिख सका है, मुझे संदेह है। प्रेमचन्द की भाषा में इतनी प्रौढ़ि और शक्ति कहां है; और शुक्ल जी की भाषा में जीवन की इतनी स्फूर्ति और यथार्थता कहां है?[2]

गुलेरी जी की भाषा की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि उसमें कांगड़ा की बोली की भीनी-भीनी गन्ध है। यद्यपि गुलेरी जी जयपुर में पैदा हुए तथा हिमाचल प्रदेश से बाहर ही उनकी शिक्षा-दीक्षा हुई तथापि उन्होंने अपने पूर्वजों की जन्मभूमि गुलेर (कांगड़ा) तथा वहां की

1. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल, पृष्ठ ४९६, सं० २०१८ वि०।
2. काव्य चिन्तन : डा० नगेन्द्र, पृष्ठ ५१ नवभारती प्रकाशन, मेरठ, द्वितीय संस्करण।

बोली-भाषा को नहीं छोड़ा। गुलेरी जी प्रायः गुलेर आया-जाया करते थे। उन्होंने अपनी कहानियों तथा निबन्धों में कांगड़ा की आंचलिक विशेषताओं को बड़े मनोयोग से उभारा है। हिमाचली-पहाड़ी के वाक्यों का हिन्दीकरण करते हुए स्थानीय शब्दों के प्रयोग से हिन्दी के शब्द-भण्डार को समृद्ध किया है। हिमाचली-पहाड़ी के हिन्दीकरण की विशेष झलक 'बुद्धु का कांटा' कहानी में द्रष्टव्य है— **"रब रोटी देता है ..... तीन बेले नमाज पढ़ लेता हूं ..... अब तो इस मोती की कमाई खाता हूं, कभी सवारी ले जाता हूं, कभी लादा, ढाई मण कणक पा लेता हूं तो दो पौली बच जाती है। ..... एक रात को मैं खाना बना-खिला के अपनी मंजड़ी पर सोया था कि मेरे मौला ने मुझे आवाज दी। ..... मैं तेरे नाल हूं, मैं तेरा बेड़ा पार करूंगा। ... ..वहां मेरे पल्ले टका नहीं था।"**[1] **......"तुझे रात दिन ऊतपन ही सूझता है। इन्हे गलसूंड चला गया।"**[2] **......"नदी की तलेटी में चट्टान थी, जो पानी बहाव से क्रमशः खिरती जाती थी।......वह एक हाथ से उसे खींचती हुई रघुनाथ को छर्रे के बहाव से निकाल लाई।"**[3] इसी तरह 'उसने कहा था' में **"चौधरी के बड़ के नीचे मंजा बिछा कर हुक्का पीता रहता था।"**[4] ... **"सूबेदारनी होरां को चिट्ठी लिखो तो मेरा मत्था टेकना लिख देना।"**[5] खड़ीबोली गद्य में हिमाचली पहाड़ी के शब्दों का प्रयोग करके हिन्दी के शब्द-भण्डार को समृद्ध बनाने में पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी ने उल्लेखनीय काम किया है। पहाड़ी की शब्द-शक्ति तथा वाक्य-रचना को उन्होंने अपनी कहानियों तथा निबन्धों में बड़े मनोयोग से स्थान दिया है। गुलेरी जी ने 'पुरानी हिन्दी' पुस्तक में हिमाचली पहाड़ी के शब्दों को 'पुरानी पंजाबी' कहा है। कारण, तब तक डोगरी या 'हिमाचली पहाड़ी' को जन्म नहीं दिलाया गया था, इनकी गणना पंजाबी की बोलियों में की जाती थी।

गुलेरी जी की 'सुखमय जीवन', 'बुद्धु का कांटा' तथा 'उसने कहा था के अतिरिक्त 'पनघट' कहानी भी बताई जाती है जो उपलब्ध नहीं है। 'सुखमय जीवन' में गुलेरी जी ने सुपने (स्वप्न), घोखणा (दोहराना); 'बुद्धु का कांटा' में चाह (चाय), बाछा (बादशाह), रब (ईश्वर), साईं- (भक्त), बेले (समय), ढाई (अढ़ाई), कणक (गेहूं), लादा (खच्चर पर लादने का बोझ), पा (लादना), पौली (चवन्नी), नाते (सम्बन्धी), सिंहों (सरदार, सिक्ख), मंजड़ी (चारपाई), मौला (प्रभु), नाल (साथ), सूर (सूअर की गाली), सली (लित्त), बट (ऐंठन), पेच (बल), डेले (आंखों के गोलक), ऊतपन (बेबकूफी), तलेटी (किनारा), गलसूंड (खाना खाते समय नासिका बिवर में कुछ अटकना), (सुंड) खिरती (क्षरित), छर्रे (झरना); 'उसने कहा था में— चीथ (कुचलना), लाड़ी (वहू), उदमी (उद्यमी), सालू (लाल ओढ़नी, सुब्बर), कुड़माई (सगाई), पाधा (पुरोहित, उपाध्याय), घुमा (जमीन का एक माप), सिगड़ी (कांगड़ी, अंगीठी जैसी), खोते (गधे), सौहरा (ससुर, गाली), मंजा (खाट), मत्था टेकना (प्रणाम करना), तीमी (स्त्री),

---

1. गुलेरी जी की अमर कहानियां : सम्पादक श्रीकान्त व्यास, पृष्ठ २३.
2. वही, पृष्ठ २६.
3. वही, पृष्ठ ३५.
4. वही, पृष्ठ ५४.
5. वही, पृष्ठ ५७.

बेड़ा (मकानों के बीच खाली भाग, आंगन), ओबरी (भीतरी कमरा, अंतःकक्ष, गर्भगृह), पट्ट-(जांघ), तथा हाड़ (आषाढ़) आदि शब्दों का सार्थक प्रयोग किया है। सार्थक इसलिए कि इनके स्थान पर इनके समतुल्य शब्द रखने पर लेखक का अभीष्ट भाव-बोध तथा अभिव्यंजना सौन्दर्य नष्ट हो जाएगा।

गुलेरी जी भाषा-शास्त्री थे। उन्होंने 'पुरानी हिन्दी' में प्रयुक्त हिमाचली शब्दों का बड़ी बारीकी से अध्ययन करके उन पर व्युत्पत्ति परक टिप्पणियां की हैं। इस सूक्ष्म पय विक्षण से स्पष्ट हो जाता है कि उनकी दृष्टि बोलियों की शब्दावली कोग्रहण करके हिन्दी के शब्द-भण्डार की शक्ति को सतत समृद्ध करने में लगी हुई थी।

हमारे यहां पुत्र के लिए 'पुत्त' तथा पुत्री के लिए 'धी, धियाण, बिट्टी' शब्द प्रयोग होते हैं। गुलेरी जी ने अपभ्रंश के उद्धरण देकर इसके बारे में बताया है कि संस्कृत 'दुहितृ' से कैसे 'धी' बन गया है :

पुत्तें जाएं कवणु गुणु अवगुणु कवणु मुएण।
जा बप्पी की भुहडी चम्पिज्जइ अवरेण।

[उस बेटे के जन्म लेने से क्या लाभ और मर जाने से क्या हानि जिसके होते बाप की धारती (धरती) पर दूसरा अधिकार कर ले।]

इस दोहे का परिवर्तन होते-होते यह रूप हो गया है :

बेटा जायां कवण गुण, अवगुण कवण धियेण।
जो ऊमां घर आपणी, गंजोजे अवरेण।

यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि मूल दोहे में 'मुये पुत्र से क्या अवगुण कहा गया है किन्तु पीछे स्त्री जाति की ओर अपमान बुद्धि बढ़ जाने और उसका उत्तराधिकार न होने से 'धी (पुत्री, संस्कृत दुहितृ, पंजाबी धी) से क्या अवगुण हो गया।'[1]

इसी तरह बेटी के लिए 'बिट्टी' प्रयोग की पुष्टि हेमचन्द्र की रचना से देते हैं :

बिट्टीए मइ भणिय तुहुं मा कुरू वंकी दिट्ठी।
पुत्ति सकण्णी भल्लि जिव मारइ हिअ्रई पविट्ठि।

बिटिया ! मैंने, भणी [कही गई] तू मत, कर, बांकी, दीठ, पुत्रि ! सकर्णी [कान वाली, नुकीली], भल्ली [छोटा भाला], जिम, मारै, हिय में, पैठी [वह]। वृद्धा कुट्टिनी नायका को समझाती है। बिट्टिए–सम्बोधन का ए।[2]

1. पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृष्ठ १८.
2. वही, पृष्ठ १७६.

पुरानी हिन्दी में एक शब्द है—पतिज्जई=पतीजते हैं, पतियाते हैं, (सहसा जनिपतियाहु—तुलसीदास) गुलेरी जी ने 'पतियाने' का अर्थ मनाना या रिझाना हिमाचली पहाड़ी होने वाले प्रयोग के आधार पर ही लिखा है।[1] इसका प्रयोग इसी अर्थ में 'कछुआ धर्म' निबन्ध में भी किया गया है—"आटा घोलकर दूध कहकर पतिया लिया था। ···सीखों से देवता पतियाये जाने लगे।"

हम फसल की कटाई के लिए बाढ़ी या बढ़ाई शब्द का प्रयोग करते हैं। गुलेरी ने सं० 'वृध्' के दो अर्थों—'बढ़ना' और 'काटना' का उल्लेख करके पहाड़ी शब्द की इस अर्थवता की ओर भी संकेत कर दिया है।[2]

अब जरा 'पत्तल' या 'पत्तलु' शब्द पर ध्यान दीजिए। 'पत्तल' का अर्थ होता है—कागज की तरह पतला तथा भोजन आदि के लिए थाली के स्थान पर प्रयुक्त होने वाला पत्तों का पात्र। हमारे यहां 'पत्तल' नाम भी लिया जाता है। पुरानी हिन्दी में यहां लघु करने की प्रवृति के फलस्वरूप 'पत्तल' को 'पत्तलु' भी कहा जाता है। 'पुरानी हिन्दी' में पत्तलु का प्रयोग 'घने पत्तों वाला' के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। गुलेरी जी ने 'पत्तलु' तथा 'इत्थु' को स्पष्ट करने के लिए पुनः हेमचन्द्र की रचना को उद्धृत किया है :—

भमरा एत्थुं वि लिम्बडइ केवि दियहडा बिलम्बु।
भण-पत्तलु छाया बहुलु फुल्लंहि जाम कयम्बु॥

इत्थुं पंजाबी इत्थु, इत्थें, सं० अत्र, दियहड़ा–दिवस (वियाड़ा), पत्तलु-पत्ते वाला।[3]

हमारे यहां अप्रैल और मई में पीले-पीले फूलों से लद जाने वाला प्रसिद्ध पेड़ है—अमलतास। इसे सं० में 'कणिकार' तथा पहाड़ी में 'कनियार', 'अलि' या 'बन्दर लाठी' भी कहते हैं। मात्र नागर-जीवन से ताल्लुक रखने वाले इस 'कनियार' को झट से 'कनेर' समझ बैठते हैं, जो गलत है। इस संदर्भ में गुलेरी जी की जानकारी तथा बहुज्ञता प्रशंसनीय है :—

उअ कणिआरु पफुल्लिअउ, कंचणकन्ति पकासु।
गोरी व यणविणिज्जिअउ, न सेवइ वणवासु॥

ओ (=देख), कनियार, प्रफूला (है), कांचन-कांति-प्रकाश, गोरी-बदन-विनिर्जित, नाई (मानो), सेता है, वनवास। वन में विकसित होने के कारण उत्प्रेक्षा है। उअ-देख (प्राकृत), कणिआरु–(सं) कणिकार (पंजाबी, पहाड़ी) कनयार, अमलताश पीले फूलों से लद जाता है।[4]

और अब जरा 'आपमुहारा' शब्द को लीजिए। 'आपमुहारा' का अर्थ है—अपने-अपने मत का। गुलेरी जी ने इसे स्पष्ट करते हुए लिखा है :—

1. पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृष्ठ ४४।
2. वही, पृष्ठ ६३।
3. वही, पृष्ठ २०४।
4. वही, पृष्ठ २११-१२।

खसम पूजते देहरा, भूत पूजिनी जोय।
एकं घर में दो मता, कुसल कहां ते होय॥

साथ ही हेमचन्द्र की रचना उद्धृत करते हैं :—

बहिणुए तं घरु कहि किव नन्दउ,
जेत्थुं कुडुम्बउं अप्पण-छंदउ ।

(बहन ! वह घर, कैसे प्रसन्न हो जहां कुटुंब आपमुहारा हो।)[1]

एक और शब्द है—रड़ाना। 'रिड़ेरना' तथा 'रड़त्त' भी इसी से बने हैं। गुलेरी जी ने 'अव्या लग्गा डुंगरहि पहिउ रडन्तउ जाइ' में रडन्तुहु-रडन्तो, पंजाबी रड़्याना=पुकारना लिखकर इसे स्पष्ट किया है।[2]

इसी क्रम में 'छट्ट' शब्द के बारे में गुलेरी जी के संधान की बानगी देखिए—

पंजाबी में भारवाहक पशुओं पर माल लादने की गौन को छट्ट कहते हैं। हिन्दी में गोन्-गौन् गूंण ही प्रचलित है, छट्ट केवल पंजाबी में आता है। गणरत्नमहोदधि में गौणी शब्द के अर्थ में वर्धमान ने इस शब्द का प्रयोग किया है (एगलिंग का संस्करण, पृ० ९१)। वहां सम्पादक ने मूल पाठ यह रखा है 'धान्याधारे गौणी। यस्याश्छाटीति प्रसिद्धि' और उसे 'मराठी छाटी (संस्कृत शाटी) =कपड़े का टुकड़ा' से मिलाया है किन्तु 'छाटी' पाठ सम्पादक ने एक ही प्रति के पाठ पर कल्पित किया है। टिप्पणियों में जो पाठान्तर दिए हैं उससे यह शब्द 'छट्ट' ही जान पड़ता है (धान्याधारे गौणे यस्याश्छहैति, यस्याः छट्टोति, यस्यास्त्वट्टेति, यस्या छाटीति)। गणरत्न महोदधि की रचना वि० सं० ११९७ में हुई। उस समय गुजरात में यह शब्द प्रचलित था। यह उस समय की 'हिन्दी' का शब्द है क्योंकि उन दिनों तक प्रादेशिक भाषाएं इतनी पृथक और रूढ़ नहीं हुई थी।[3]

और जंदा, जंदरा तथा जंतर का विश्लेषण वे इस तरह कहते हैं—

संस्कृत यन्त्र व यन्त्रक के अपभ्रंश 'जंदरा' का पंजाबी में अर्थ ताला है और तुलसीदास जी के रामचरित मानस में—

नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित प्राण जाहिं केहि बाट।

इस दोहे में भी जंत्रित का अर्थ 'ताले से बन्द' ही है। जंदर की खाती उस यन्त्र के लिए भी रूढ़ि हो गई है जो छत की कड़ी को ऊंचा करने में काम आता है। संस्कृत में 'यन्त्रक' चरखे के अर्थ में आता है। एक पुराना श्लोक है—

---

1. पुरानी हिन्दी चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृष्ठ २३०-३१।
2. वही, पृष्ठ २४७-४८।
3. नागरी प्रचारिणी पत्रिका भाग-१, अंक-३, पृष्ठ ७५-७६, सं० १९७७ वि०।

रे रे यन्त्रक मा रोदीः कं न प्रमयन्त्यमः ।
कटाक्षाक्षपमात्रेण कराकृष्टस्य का कथा ।

रे चरखे चूं चूं क्यों करता है ? क्यों रोता है ? स्त्रियां केवल कटाक्ष ही डालकर किस किसको नहीं घुमा देतीं ? (तेरी तरह) जिसे हाथ पकड़ कर खैंचे उसका तो कहना ही क्या ? प्रबन्ध चिन्तामणि में यह श्लोक मुंज से उस समय कहा गया है जिस समय वह तैलप की राजधानी में गली-गली घुमाया गया था और जिस अवसर पर उसने 'घर-घर तिम्य नचावई' और 'हिंडई डोरी बन्धियइ' वाला दोहा कहा था। टानी ने यहां पर यन्त्रक का अर्थ लेकर जेलर किया है कि हे जेलर, मत रो इत्यादि। यंत्र की रूढ़ि कहीं-कहीं अरहट के अर्थ में भी हो गई है। महाभारत आदि में 'यन्त्र' एक तरह की गोफन या तोप के अर्थ में आता है जिससे शत्रुओं पर बड़े-बड़े पत्थर फैंके जाते थे। और वहीं 'यंत्र' का अर्थ वह घिरियों वाला डोरियों का समावेश भी है जिससे इन्द्रध्वज पूजा के लिए ऊंचा उठाया जाकर फिर धीरे से गिराया जाता था (यन्त्रोंत्सृष्ट इव ध्वजः) हिन्दी में 'जंतर' भूतप्रेतादि से बचाने वाले लिखित वर्ण या रेखा निवेश पर नियमित हो गया है और बंगला में 'जाता' आटा पीसने की चक्की ही रह गई है ?[1]

हमारे यहां महिलाएं कभी-कभी 'बेढुआं रोटी' बनाती हैं। गेहूं के खमीरे आटे के भटूरू तो प्रायः बनते ही हैं। आटे में उड़द और मूंद की पिट्ठी मिलाकर या अलग-अलग भर कर भटूरू तले जाते है। इसी को 'बेढूआं रोटी' कहते हैं। दुकानदार पूरी-कचौरी भी ऐसे ही बनाते हैं। गुलेरी जी ने पुरानी हिन्दी के 'बेढइ' शब्द का सहारा लेकर इसे स्पष्ट किया है। बेढइ का अर्थ है घेरना। पंजाबी के वेढा 'बेड़ा' जब चलने लगे तब सूबेदार बेड़े में से निकल कर आया। (उसने कहा था) का अर्थ भी ऐसे ही स्पष्ट किया है—घिरा हुआ मकान, जनाना।[2]

इसी तरह लीह, रेह=लीक, वाहना (सवारी करना) तथा सं० नश्यत् से नासन्त होकर 'न्हस' (भागना) की व्युत्पति बताई है। 'नश्यत्' का अर्थ है–नष्ट होना, अदर्शन होना या भागना।[3]

गुलेरी जी ने देवकुल निबन्ध में बां (सं० वापी) देहरा, देहरी, नौण (सं० निपान) (पाणिनी का निपान माहावाः), तला (सं० तड़ाग या तटाक, हिन्दी-तालाब), मूहरे 'मोहरे' तथा म्हास्ती आदि शब्दों का प्रयोग किया है। 'म्हास्ती' के स्पष्टीकरण में लिखा है—'सतियों के लिए 'महासती' पद का व्यवहार सारे देश में मिलने से देश की एकता का अद्भुत प्रमाण मिलता है। मेवाड़ में महाराणाओं की सतियों के समाधिस्थान को महासती कहते हैं।... विपरीत लक्षणा से पंजाबी पहाड़ी में 'महासती' या 'म्हासती' दुराचारिणी स्त्री के लिए गाली का पद हो गया है।[4] 'कछुआ-धर्म' में टोटा और हुज्जत शब्द आए हैं।

---

1. नागरी प्रचारिणी पत्रिका : भाग ३, पृष्ठ ८७-८८, सं० १९७७ वि०।
2. पुरानी हिन्दी : चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, पृष्ठ ४८।
3. वही, पृष्ठ २४०।
4. गुलेरी ग्रन्थ : पहला खण्ड, पहला भाग, पृष्ठ १२९।

गुलेरी जी की भाषा-शैली, शब्द-प्रयोग तथा भाषा की व्यंजना शक्ति को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि वे बहुपठित तथा बहुश्रुत होने के कारण बहुज्ञ थे। उनको पल्लव ग्राही पांडित्य से अपनी प्रतिभा को लादने का अवसर नहीं था, जैसा आज के विद्वानों में देखा जाता है।

गुलेरी जी ने 'अमंगल के स्थान में मंगल शब्द, निबन्ध में कांगड़ा-घाटी में प्रयुक्त होने वाले 'अमंगल' के स्थान पर 'मंगल शब्दों' के प्रयोग के उदाहरणों में वहां की भाषिक-संरचना का स्पर्श किया है। वैधव्य-सूचक चूड़ी टूटना के लिए 'चूड़ी मुरकना', रसोई में जलाने की लकड़ी के गट्ठर के लिए 'भारा' शब्द, किसी बड़े की मौत पर उससे छोटों द्वारा बाल मुंडवाने के लिए 'भद्दरा', 'आंख' निबन्ध में आंख के गोलक के लिए 'डेला', सोंठे के लिए 'सोटे', आदि प्रयोग उल्लेखनीय हैं।

'संस्कृत की टिपरारी' निबन्ध में गुलेरी जी ने कर्ण द्वारा धृतराष्ट्र के दरबार में आए प्रवासी ब्राह्मणों तथा बाहीकों की गाथाओं की सामाजिक चेतना के चित्रण के सन्दर्भ में कुल्लू तथा चम्बा विषयक लोक-प्रचलित संक्षिप्त लोकोक्तियों — 'जाओ कुल्लू हो जाओ उल्लू', 'गए चम्बा, बड़ा अचम्भा' को 'रांड-सांड सीढ़ी सन्यासी, इनसे बचे तो सेवे कासी' तथा जाए कलकत्ते खाय अलबत्ते' के वजन में उद्धृत किया है।

'बनारसी ठग' निबन्ध में 'वाराणसी' से 'बनारस' बनने की प्रक्रिया को स्पष्ट करते हुए लिखते हैं कि बोलने में व्यत्यय हो जाने से 'चिलम' का 'चिमल' तथा 'चाकू' का 'काचू' हो जाता है। हमारे यहां चिलम को चिमल प्रायः कहा ही जाता है।

स्पष्ट है कि भाषा का अध्ययन तथा विश्लेषण करते समय गुलेरी जी ने हिमाचली-पहाड़ी के पुरानी पंजाबी के परिवेश में खूब समझा था। कहना न होगा कि 'पुरानी हिन्दी' का विश्लेषण करने में गुलेरी जी को उनकी मातृभाषा हिमाचली पहाड़ी से बड़ी सहायता मिली थी। वे शब्दों की अर्थवत्ता तथा उनके व्युत्पत्तिपरक विकास स्पष्ट करने के लिए सतत जागरूक रहते थे। 'पुरानी हिन्दी निबन्धों एवं कहानियों में हिमाचली पहाड़ी के शब्दों का तथ्यान्वेषण तथा तथ्याख्यान गुलेरी जी की अप्रतिम प्रतिभा का द्योतक है।

लम्बे अरसे के बाद गुलेरी जी की भाषागत इस विशेषता को उपन्यासकार यशपाल तथा बाल-साहित्यकार मस्तराम कपूर ने उभार कर अपने कथा साहित्य में आत्मसात करने का सफल प्रयास किया है।

हिन्दी विभाग,
श्रीराम कालिज आफ कामर्स,
दिल्ली–७।

संसार का सबसे पुराना जनपद

मलाणा

—देसराज डोगरा

मलाणा पहुंचते-पहुंचते वर्षा आरम्भ हो गई और क्या देखते हैं कि आधे घण्टे के अन्दर-अन्दर मलाणा के ईर्द-गिर्द की सारी चोटियां बर्फ से लद गईं। जरी से जब हम चले थे तो आकाश बिल्कुल साफ था और सितम्बर में ऐसी सम्भावना भी नहीं होती, परन्तु यह हमारा सौभाग्य ही था कि गर्मियों में भी हम वहां बर्फ का मजा लूट सके। इस से अनुमान लगाना कठिन नहीं कि सर्दियों में मलाणा की क्या हालत होती होगी। वैसे तो मलाणा की ऊंचाई ७५०० फुट के करीब है, परन्तु चारों ओर ऊंचे-ऊंचे पहाड़ होने के कारण ठण्ड बहुत होती है और नवम्बर से अप्रैल तक मलाणा में बर्फ जमी रहती है।

कुल्लू से मलाणा के लिए तीन रास्ते हैं। नगर से चन्द्रखणी पार करके, कसोल से रशौल होकर, और जरी से मलाणा। इस से सबसे सुगम रास्ता है भून्तर से बस में बैठकर जरी और फिर पैदल दस मील तय करके मलाणा। चढ़ाई काफी कठिन है परन्तु देवदार की घनी छाया और नदी के मधुर स्वर और प्राकृतिक सौंदर्य से ओत-प्रोत चारों दृष्य पांवों की थकावट से अधिक मन और आंखों को ताजा करते हैं।

मलाणा दो भागों में बंटा हुआ है जिनके नाम हैं सोरावेढ और धारावेढ। कुल ११६ घर हैं और जनसंख्या कोई ७०० के करीब है। गांव में बहुत थोड़ी जमीन है, जमीन नाले के पार या तीन मील दूर उपत्यका में है जो जोत के नीचे पड़ती है। गांव में पाईप का पानी है और एक प्राईमरी पाठशाला है, परन्तु बच्चे नदारद। पढ़ने पढ़ाने का मलाणा में कोई रिवाज नहीं है। स्कूल १९४६ से खुला है परन्तु आज तक किसी ने पांचवीं पास न की और न ही किसी ने बाहर नौकरी ही की है, हां केवल मंगलचन्द ही एक अपवाद है जिसने कुछ दिन पहले एस०एस०बी० में नाम लिखा लिया था। गांव के ठीक बीच एक चबूतरा है जहां गांव की कौंसल बैठती है। चबूतरे के पास ही देवता का मन्दिर और तीन धर्मशालाएं हैं जहां यात्री ठहरते हैं। हरेक यात्री को बताने पर देवता की ओर से राशन पानी मिलता है। जिसमें आटा, चावल, दालें, देसी घी और मसाले सम्मिलित हैं। पकाना ना जानने की सूरत में रसोईया और सेवक भी दे दिया जाता है।

मलाणा की अपनी ही बोली है जिसे कणाशी कहते हैं। यह बोली केवल मलाणे ही समझते हैं। आश्चर्य की बात है कि यह बोली कुल्लू की अन्य सारी बोलियों से भिन्न है। और पास के गांवों रसोल और चौकी कहीं भी नहीं समझी जाती, हालांकि मलाणे के लोग कुल्लू की दूसरी बोलियों को जानते हैं। कुल्लू के लोग इसे देवताओं की भाषा कहते हैं।

शादी विवाह मलाणे में आपस में ही होते हैं । यहां की कोई लड़की बाहर नहीं व्याही गई। हां कुछ लड़कियां भाग कर बाहर चली गई हैं । विवाह साधारणतया सौरावेढ के धारावेढ और धारावेढ के सौरावेढ में होते हैं । विवाह आम तौर पर प्रेम विवाह ही होते हैं । लड़का लड़की एक दूसरे को पसन्द कर लेते हैं, और माता पिता की रजामन्दी ले लेते हैं । ना तो दहेज का ही रिवाज है और न कोई गाजा बाजा ही होता है । दो चार मित्रों के साथ दूल्हा लड़की के घर जाता है और लड़की आठ दस सहेलियों के साथ दूल्हा के घर जाती है, जहां उनको खिलाया पिलाया जाता है और विवाह सम्पन्न हो जाता है, न ही वेद मन्त्र की जरूरत होती है, और न ही ढोल-ढमाके की ।

विवाह-पाश तोड़ना या तलाक लेना कोई बड़ी बात नहीं । प्रायः ही ऐसे तोड़-जोड़ होते रहते हैं । कोई धारावेढ का सौरावेढ से और सौरावेढ़ का धारावेढ से लड़की चुरा लाता है तो पिछले पति को केवल बीस रुपये मुआवजा देना होता है । यदि बच्चे हों तो पिछले घर में ही रह जाते हैं । बहुत छोटे हों तो बड़े होने पर पिता को सौंप दिए जाते हैं । नये पति और पुराने पति में कोई तलखी नहीं होती और फिर से जीवन नैया उसी तरह चलने लगती है । एक स्त्री का इस तरह २२-२३ शादियों का भी रिकार्ड है । विवाह को यह लोग ईश्वरीय देन नहीं मानते, इसे जीवन को चलाने का एक साधन मानते हैं ।

मकान यहां के तिमंजले हैं । सबसे नीचे ढोर और भेड़ बकरी बीच में स्टोर और ऊपरी मंजिल पर सोने और रसोई का प्रबन्ध होता है । सब घर प्रायः एक जैसे पुराने ढांचे के होते हैं । हां, एक घर श्री कायला का ऐसा भी देखा, जहां चारों ओर शीशे लगे थे । मंजिलें भी चार थी और कमरे भी कोई बीस होंगे । घर लकड़ी और पत्थर के बने होते हैं । अधिकतर छतों पर मोटे स्लेट और कइयों पर घास-फूंस भी है । अनाज की तो फसल एक ही होती है, काद्रू, गेहूं, माश आदि, गांव में चीजों का लेन देन आपस में ही हो जाता है और एक वस्तु के बदले दूसरी वस्तु तवदील की जाती है । उदाहरणतया तेल लेना हो तो मक्की देनी पड़ती है और घी के बदले में शहद बदल दिया जाता है । परन्तु इस जनपद की सबसे रोचक बात है यहां के भाव । यदि तबादले में किसी के पास कोई वस्तु न हो और गांव के किसी अन्य भाई से खरीदनी पड़े तो मोल की आज भी निम्नलिखित दर है :

१. घी २ आने आधा पाथा ।
२. शहद २ आने पाथा ।
३. गेहूं २ आने पाथा ।
४. काद्रू २ आने चार पाथा ।
५. ऊन २ आने पाथा ।
(पाथा :– २ किलो)

विवाह शादी पर खरीद करने के गांव के यही भाव हैं । समाजवादी समाज का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता है ।

भेड़ पालने का पेशा इन सब का है । इसके अतिरिक्त जड़ी बूटियों से भी आमदनी हो जाती है ।

गांव का शासन देवता जमलू के हाथ में है। असल में जमलू महर्षिजमदग्नि का नाम है और यह गणतन्त्र उनके नाम पर ही है और यहां उन का राज्य ही माना जाता है। सारा गांव और जमीन देवता के ही नाम है और यहां के निवासी देवता के मुजारा के रूप में काम करते हैं। गांव चार वार्डों में विभगत है। जिन्हें बुध कहते हैं इन बुधों से दो-दो ज्येष्ठ (नम्बरदार) नियुक्त होते हैं। गांव के इस गणतन्त्र की शासन प्रणाली इस प्रकार है।

अपर सदन और लोअर सदन उच्च सदन के सदस्य हैं, जिन्हें मूढिए कहते हैं :

१. कर्मिष्ठ २. गुरु ३. पुज्यारा ४. आठ जेष्ठ।

कर्मिष्ठ, गुरु और पुज्यारा खानदानी होते हैं और केवल पिता के मरने के बाद ही बदलते हैं और जेष्ठ जो हर बुध (वार्ड) से दो-दो होते हैं हर साल चुने जाते हैं।

लोअर सदन में हर घर से एक सदस्य लिया जाता है जो प्रायः घर का मुखिया होता है, इसे कौर कहा जाता है। यहां कोई आदमी अदालत में नहीं जाता, हर प्रकार का न्याय यहां ही हो जाता है। यदि कोई इस कौंसिल के फैसले का उल्लंघन करे तो उसका हुक्कापानी बन्द कर दिया जाता है।

सारा प्रशासन प्रजातान्त्रिक ढंग से चलाया जाता है। न्याय भी जनता की राय से होता है। कोई मामला पेश होने पर पहले उच्च सदन में जाता है और जो मत वह बना पाए, वह राय के लिए लोअर सदन के पास जाता है। एक मत होने पर निर्णय सुना दिया जाता है। परन्तु यदि मत भिन्न हो तो उस पर पुनर्विचार होता है। यदि फिर भी एक मत न हो सकें तो देवता के दरबार में मामला जाता है और दो छोटे-छोटे बकरे लाए जाते हैं। बकरी की पिछली रानें काट कर जहर भर दिया जाता है। जिस पक्ष का बकरा पहले मर जाता है वह हार जाता है। अब जहर डालने की प्रथा कम हो गई है केवल बकरों पर पानी डालते हैं और जिसका बकरा पहले विज (कांप) जाएं वह पक्ष हारा माना जाता है।

यदि कोई पीड़ित किसी मामले में शीघ्र न्याय चाहता हो तो वह गांव के मध्य मन्दिर के पास बने चबूतरे, (हारचे) जिस पर अप्पर कौंसिल (ज्यष्ठांग) के सदस्य बैठते हैं, के पास आग जला देता है। गांव के लोग धुआं देख कर चर्चा करने लगते हैं। सबसे पहले जो ज्येष्ठ इस बात को सुनेगा वह हारचे (चबूतरे) पर जाकर तीन बार छड़ी घुमाएगा और आवाज लगाएगा। लोग आने आरम्भ हो जाएंगे और फिर शीघ्र ही कौंसिल बैठ जाएगी ताकि निर्विलम्ब न्याय हो सके।

अधिकारियों को जुर्माना दुगना किया जाता है। एक वर्ष मलाणा में शराब बन्द कर दिया गया। कारदार ने पी लिया तो उसे २५ की बजाये ५० रुपये जुर्माना कर दिया। दो पार्टियों बन गई। मामला देवता के पास गया। देवता ने खाने पीने की छूट दे दी। पीने के बिना इनका गुजर नहीं, परन्तु स्त्रियां बिल्कुल नहीं पीतीं।

साधारणतया कोई भी बाहर अदालत में नहीं जाता, परन्तु यदि कोई चला भी जाए तो सभी उसके खिलाफ शहादत देंगे कि वह झूठा है। मलाणा में उसका सामाजिक बहिष्कार कर दिया जाता है और उसे वहां रहना कठिस हो जाता है। पिछले सौ वर्षों में इक्का-दुक्का लोगों ने ही अदालतों के दरवाजे खटखटाये हैं परन्तु उनका बहुत बुरा हशर हुआ। एक बार जनपद के फैसले अनुसार एक कर्मिष्ठ को देश निकाला दे दिया गया। उसने उस समय के सहायक कमिश्नर को बहकाया और वह एक फौजी दस्ते के संरक्षण में मलाणा वापिस आ गया। लोगों ने सरकार के भय से उसे वहां रहने तो दिया परन्तु उसका बहिष्कार करके हुक्कापानी, ओखल, मेल-बर्तन, बात चीत सब बन्द कर दी। फलस्वरूप वह घुटघुट के मर गया।

इस प्रकार एक और रोचक घटना है। एक जमींदार ने अपनी तीन बीघा जमीन किसी अन्य जमींदार को बेच दी और उसको सरकारी कागजों में दूसरे के नाम चढ़ा दिया। जब फसल पक्की तो किसी और ने ही उसे काट डाला। लेने वाले ने मामला थाने में भेज दिया। थानेदार ने कर्मिष्ठ की राय जाननी चाही। उन्होंने फैसला दिया कि काटने वाले को दण्ड देने की बजाय बेचने वाले को २०० रुपये देना होगा, गांव की अदालत का फैसला सुन कर अधिकारी हैरान हो गए, परन्तु वादी ने मजबूर होकर फिर गांव में आकर समझौता कर लिया और थाने से केस वापिस ले लिया। हकीकत यह थी कि बेचने वाले ने जबानी-जबानी वह भूमि काटने वाले को दे दी थी और १०० रुपए ले लिए थे, परन्तु कागज-पत्र कोई न बना था। गांव में देव ताके सामने झूठ नहीं बोला जाता, इस लिए सच्चाई प्रकट होने पर उसे और एक सौ रुपए जुर्माना भरना पड़ा।

एक बार एक कार्यकर्त्ता ने देवता के खजाने से चान्दी चुरा कर अपनी स्त्री के लिए आभूषण बना लिए, परन्तु उसकी स्त्री से यह अपराध बर्दाशत न किया गया और उसने अपने पति की मुखबरी कर दी। छानबीन हुई और कारिन्दे को दोषी ठहरा कर देश निकाला दिया गया। स्त्री भी उसके साथ गांव छोड़ कर चली गई, हालांकि उसको सम्पत्ति पर अधिकार की आज्ञा जनपद ने दे दी थी।

सभी मलाणी अपना दुःख दर्द अपनी अदालत में ही रखते हैं, क्योंकि यहां झूठ नहीं बोला जाता और पक्षपात नहीं होता, इस लिए सभी को विश्वास रहता है। निर्णय हो जाने की सूरत में दोनों का मन मुटाव मिटाने के लिए उनको देवता के सिंहासन के पास बुलाया जाता है और उनका मेल कराया जाता है, जिसे छिधरा करना कहते हैं।

गांव के बीचों बीच सौरावेढ देवता के सिंहासन हैं। एक बड़ा सा प्लेटफार्म बना हुआ है, जिस पर ज्येष्ठांग बैठता है। कर्मिष्ठ, गुरु और पुजारी के अपने-अपने अलग-अलग स्थान हैं और आठ निर्वाचित ज्येष्ठों के भी इस स्थान पर बैठने के लिए जगहें बनी हुई हैं। नीचे एक खुला मैदान है जिसमें कौर के सदस्य जो हर घर से आते हैं बैठते हैं। सभी की उपस्थिति अनिवार्य होती है। किसी के न आने पर उसे भारी जुर्माना भरना होता है। कौर के सदस्य को चाकर और दूसरों को हूद कहा जाता है।

खण्ड विकास अधिकारी,
रैत, जिला कांगड़ा, (हि०प्र०)।

मण्डियाली के बन्धुतावाचक संज्ञापद
(किन्शिप नाउन्ज़)

—डॉ० जगतपाल शर्मा

मण्डियाली 'पश्चिमी पहाड़ी'[1] की मुख्य बोलियों में से है। अब इसे 'पहाड़ी' की मुख्य बोली के रूप में भी जाना जाता है।

प्रस्तुत निबन्ध में मण्डियाली के बन्धुतावाचक संज्ञा पदों को प्रस्तुत किया जा रहा है। मण्डियाली का क्षेत्र छः तहसीलों में बंटा हैं—मण्डी सदर, जोगेन्द्र नगर, सरकाघाट, सुन्दरनगर, चिच्योट तथा करसोग इस निबन्ध के लिए सामग्री तहसील मण्डी सदर से ली गई है जो कि जिला मण्डी की केन्द्रीय तहसील है। मण्डियाली क्षेत्र की अन्य तहसीलों में बन्धुतावाचक संज्ञापदों को लेकर यत्किंचित ही अन्तर है। इस निबन्ध के लिए सूचक पण्डित भवानीदत्त शास्त्री हैं जो समखेत्तर मुहल्ला मण्डी के निवासी हैं, किन्तु जहां कहीं भी किसी कठिनाई का अनुभव हुआ है वहां इस क्षेत्र के अन्य लोगों से भी सूचक के रूप में सहायता ली गई है। यहां पर मण्डी सदर तहसील के आधार पर ही बन्धुतावाचक संज्ञा पदों को लेकर विचार किया जा रहा है।

बन्धुतावाचक संज्ञा पद (किन्शिप् नाउन्ज़) वे संज्ञापद हैं जो पारिवारिक सम्बन्धों को व्यक्त करते है या पारिवारिक सम्बन्धों को सूचित करते हैं। उदाहरणार्थ :—

अम्मा	'मां'	माम्मा	'मामा'
बाव	'पिता'	माम्मी	'मामी'
भाई	'भाई'	चाच्चा	'चाचा'
बँह्‌ण	'बहिन'	चाच्ची	'चाची'

मण्डियाली के बहुत से बन्धुवाचक संज्ञापद पूर्व प्रत्यायों तथा पर-प्रत्यायों से व्युत्पन्न हैं। इन समस्त बन्धुतावाचक संज्ञापदों को लेकर यहां विचार किया जा रहा है। मण्डियाली के समस्त बन्धुतावाचक संज्ञापदों को तालिकाओं में इस प्रकार दिखा सकते हैं।

डा० जी०ए० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग-1, खण्ड-१, पृष्ठ १२०.

तालिका नं॰ १

सामान्य बन्धुतावाचक संज्ञापद :

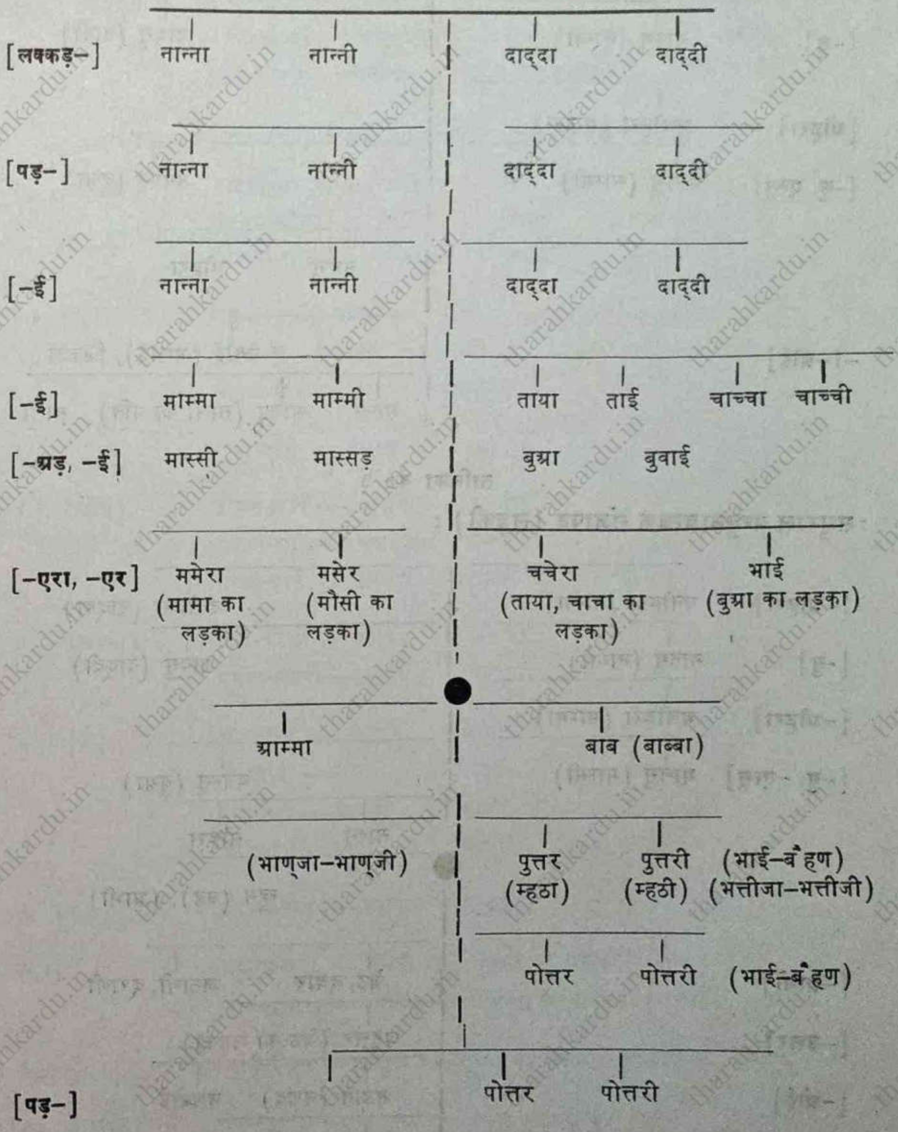

तालिका नं० २

ससुराल बन्धुतावाचक संज्ञापद (लड़का) :

[ओहरा]	नानौहरा (नाना)	ददौहरा (दाद्दा)
[-सु]	नानसु (नान्नी)	दाद्सु (दादी)
[ओहरा]	मलौहरा (माम्मा)	
[-सु, एस्सू]	मालसु (माम्मी)	बबेस्सू (बुआ)
		सास्सू सौहरा
-[-ओई]		ज्वाँई (भणोई), जिज्जा
		साला साड्ढू (साली का पति) साली

तालिका नं० ३

ससुराल बन्धुतावाचक संज्ञापद (लड़की) :

[-ओहरा]	ननौहरा (नान्ना)	ददौहरा (दाद्दा)
[-सु]	नानसु (नान्नी)	दादसु (दाद्दी)
[-ओहरा]	मलौहरा (माम्मा)	
[-सु, -एस्सू]	मालसु (माम्मी)	बबेस्सू (बुआ)
		सास्सू सौहरा
		न्हूस (बहु), (भाभी)
[-आणी]		जेठ, द्योर जठाणी, द्राणी
[-उत्तर]		जठुत्तर (जेठ का लड़का)
[-ओई]		नड़ान (नणंद) नणबोई
[उत्तर]		नड़ुत्तर (ननद का लड़का)

बन्धुतावाचक पूर्व-प्रत्ययों के साथ संज्ञा पदों के उदाहरण इस प्रकार हैं :

१.	[लक्कड़–]	लक्कड़-दाद्दा	'लक्कड़ दादा'	लक्कड़-नान्ना	'लक्कड़ नाना'
		लक्कड़-दाद्दी	'लक्कड़ दादी'	लक्कड़ नान्नी	'लक्कड़ नानी'
२.	[पड़—]	पड़-दाद्दा	'पड़दादा'	पड़-नान्नी	'पड़ नानी'
		पड़-दाद्दी	'पड़दादी'	पड़-पोत्तर	'पड़ पोत्तर'
		पड़-नान्ना	'पड़नाना'	पड़-पोत्तरी	'पड़ पोत्तरी'

बन्धुतावाचक पर-प्रत्ययों के साथ संज्ञा पदों के उदाहरण इस प्रकार है :

१.	[ओहरा]	दाद्दा-ओहरा — ददौहरा	'दादा'
		नान्ना-ओहरा — ननौहहा	'नाना'
		माम्मा-ओहरा — मलौहरा	'मामा'
२.	[सु]	दाद्दी-सु — दादसु	'दादी'
		नान्नी-सु — नानसु	'नानी'
		माम्मी-सु — मालसू	'मामी'
३.	[एस्सू]	बुआ-एस्सू — बबेस्सू	'बुआ'
४.	[ओई]	बँह्‌ण-ओई — भणोई	'बहनोई'
		नड़ान-ओई — नणदोई	'ननदोई'
		(नणद-ओई — नणदोई	'ननदोई')
५.	[आणी]	जेठ–आणी —जठाणी	'जेठानी'
		द्योर-आणी—देराणी	'देवरानी'
६.	[ई]	माम्मा-ई — माम्मी	'मामी'
		नान्ना-ई — नान्नी	'नानी'
		दाद्दा-ई — दाद्दी	'दादी'
		चाच्चा-ई—चाच्ची	'चाची'
७.	[अड़]	मास्सी-अड़ — मास्सड़	'मौसा'
८.	[एरा]	माम्मा-एरा — ममेरा	'मामा का लड़का' (ममेरा)
		चाच्चा-एरा — चचेरा	'चाचा का लड़का' (चचेरा)
९.	[एर]	मास्सी-एर —मसेर	'मौसी का लड़का' (भाई)
१०.	[उत्तर]	जेठ–उत्तर — जठुत्तर	'जेठ का लड़का'
		नड़ान-उत्तर—नड़ुत्तर	'ननद का लड़का'

उपर्युक्त बन्धुतावाचक संज्ञापदों के उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि मण्डियाली के बहुत से बन्धुतावाचक संज्ञापद पूर्व-प्रत्ययों तथा पर-प्रत्ययों से व्युत्पन्न हैं। उपर्युक्त उदाहरणों में कुछ बन्धुतावाचक संज्ञापद ऐसे हैं जो कि द्विअर्थवाचक हैं। जैसे—ददौहरा—'दादा' या 'दादा का घर', ननौहरा—नाना या 'नाना का घर', मलौहरा—मामा या 'मामा का घर'।

प्रस्तुत निबन्ध डॉ० रवीन्द्रनाथ श्रीवास्तव (प्रो० भाषा विज्ञान विभाग, दिल्ली विश्व-विद्यालय, दिल्ली) के प्रति आभार व्यक्त करने से पूर्व सम्पन्न नहीं हो जाता। मैं उनके सुझावों के लिए अत्यन्त आभारी हूं।

हिन्दी विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्व विद्यालय
शिमला–१७१००५

बन्नी एक मौन पृष्ठ

–प्रेम कुमार शर्मा

ऐतिहासिक पृष्ठ ? हां, मैं ऐतिहासिक पृष्ठ ही कहना उचित समझता हूं क्योंकि देश के न जाने कितने ही ऐसे पृष्ठ मिल सकते हैं जो स्मरणों पर ही आधारित हैं। पाठक जानते हैं हमारे देश के न जाने कितने ऐसे ऐतिहासिक पृष्ठ होंगे जो विभिन्न परिवर्तनों तथा विप्लवों के कारण भू-गर्भ समाधि ले चुके हैं। कुछ ऐसे भी मिलेंगे जो परम्पराओं, स्मरणों और दन्त-कथाओं पर उभरे मिलते हैं। कुछ ऐसे भी होंगे जो जनश्रुति के बल पर आज एक अपनी सन्दिग्ध जैसी प्रमाणिकता सामने रखते हैं। कुछ भी हो भारती संस्कृति के साधकों ने जब तक अपनी साधना में विपन्नता आशंका पाई तब-तब वे हिमाच्छादित पर्वत श्रेणियों की गुफाओं में उसे त्राण देते रहे हैं। उन उपासकों के कुछ मुखर थोड़े मौन पृष्ठ भी पाये जाते हैं। यदि आज ऐसे मौन पृष्ठ को वाणी देने का प्रयास करूं तो अनुपयुक्त नहीं होगा।

पाठक सोचेंगे यह बन्नी क्या है ? जब तक इसका पुरा परिचय नहीं दिया जाता मेरे लेख का अभिप्राय भी पूर्ण नहीं होता। ऊपर का परिचय पाठक पहले इतना ही जान लें कि जो महानता या विशेषता कांगड़ा में जालपा लाटा वाली, जम्मू में वैष्णवी तथा देश के दूसरे भागों में नयना, मीनाक्षी, काली, सरस्वती आदि को प्राप्त है वही चम्बा में बन्नी वाली को उपलब्ध है, जिसका ऐतिहासिक महत्त्व १७वी शताब्दी से सम्बन्ध रखता है। पर यह है कहां ? पहले इस पर दृष्टि डालना आवश्यक समझता हूं। सब जानते हैं कि चम्बा हिमाचल का एक जिला है जिसके पूर्व में लाहौल, कुल्लू, दक्षिण-पश्चिम में पंजाब और उत्तर में जम्मू-काश्मीर स्थित हैं। जिले का नाम भी अपना एक पृथक इतिहास रखता है इस लिए थोड़ा सा परिचय और कह लीजिए। एक हजार वर्ष पूर्व की बात है कि वर्तमान चम्बा की राजधानी चम्बा नगर से पूर्व की ओर लगभग ३९ मील दूर ब्रह्मपुर नामके स्थान पर थी, जिसे आज भरमौर कहा जाता है और आज तहसील का मुख्यालय भी है। दसवीं शताब्दी में राजा साहिल वर्मा की सुपुत्री चम्पावती की पसन्द पर राजा द्वारा अपनी राजधानी भरमौर से चम्बा स्थानान्तरित की गई। राजकुमारी चम्पावती के नाम पर ही नवीन राजधानी का नाम चम्पा रखा गया जो बाद में चम्बा हो गया। एक और भी मत है कि नाथपन्थी सिद्ध चरपटनाथ भरमौर में अधिक बर्फ पड़ने के कारण सर्दी के दिन काटने के लिए वर्तमान चम्बा नगर जो एक छोटा सा ब्राह्मणों का गांव था चला आया करता था। यहां पर चम्पा वृक्ष की अधिकता थी इसी कारण इस गांव का नाम चम्पा रखा जो बाद में चम्बा बन गया।

मैंने ऊपर भरमौर का संकेत किया है। इसी तहसील का एक पंचायत सर्कल है—बड़ग्रां जो भरमौर से लगभग ३९ किलोमीटर पश्चिम की ओर अनुमानतः आठ हजार फुट की ऊंचाई

पर पर्वत श्रेणियों के मध्य स्थित है। यहां से लगभग तीन किलोमीटर पश्चिम की ओर एक दो घरों का गांव है। इसी का नाम बन्नी है। गांव तो विशेष नहीं लेकिन गांव में स्थित देवी शक्ति अवश्य विशेष कही जा सकती है। वैसे तो बड़ग्रां सर्कल भी नाम के अनुसार बड़ा नहीं क्योंकि इसमें १७ गांव और ११६५ जनसंख्या पिछली जनगणना अनुसार है। इससे लेखक का यह अभिप्राय नहीं है कि बन्नी जाने के लिए पहले भरमौर ही जाना पड़ता है। यदि कोई चम्बा की ओर से जाना चाहता हो तो चम्बा से पूर्व की ओर मोटर मार्ग पर अनुमानतः ४३ किलोमीटर दूर एक नाले के आरपार दुर्गठ्ठी नाम का स्थान आता है, जहां छोटा सा बाजार, वन विभाग एवं पी०-डब्ल्यू० डी० के विश्रामगृह आदि भी है। यहां से एक किलोमीटर आगे एक और छोटी सी दुकान आती है। इस स्थान का नाम डुघोष बोला जाता है। इस दुकान के नीचे पास ही दाईं ओर लोहे के रस्सों से जकड़े गए तख्तों वाला रावी पर पुल बना है, जिसे पार करते समय थोड़ा दिल थाम लेना पड़ता है क्योंकि यह इस प्रकार हिलने लगता है कि पार करने वाला व्यक्ति दूर नीचे बहती हुई रावी को देख कर गिर पड़ने के भय से कांप उठता है। इस पुल को पार करते ही सीधी ३ मील की विकट चढ़ाई चढ़ने के उपरान्त 'थल्ला' नाम का गांव आता है। जिसमें राजकीय प्राथमिक विद्यालय भी विद्यमान है। इस गांव के निवासी बहुत ही अतिथि भक्त और श्रद्धालु हैं। यहां से समाने १८५०० फुट की ऊंचाई पर ऊंची कैलाश पर्वत की भव्य चोटी दिखाई देती है। मन चाहता है इसकी बनावट को निरन्तर देखा ही जाता रहे। ऐसा लगता है कि यह कैलाश शिखर पत्थर, मिट्टी का न होकर चान्दी की गगन चुम्बी विभिन्न कंगूरों वाली भव्य मिनार खड़ी है।

थल्ला ग्राम के आगे की ओर लगभग एक मील नीचे उतराई उतर कर पुनः थोड़ा सीधा चलने पर 'सुल्लो' नामक छोटे से ग्राम से आगे चढ़ाई उतराई की भरमार आ जाती है। चढ़ते उतरते लगभग आठ मील की दूरी पर 'तुंदाह' नामक ग्राम आता है। इधर वन विभाग का विश्राम-गृह, फोरेस्ट क्वार्टर, आयुर्वेदिक अस्पताल, पशु चिकित्सालय, प्राथमिक विद्यालय और छोटा सा शक्ति का मन्दिर विद्यमान है। यहां की परिस्थितियां बताती हैं कि हिमाचल के कर्मचारी कैसी कैसी असुविधाजनक स्थिति का सामना करते हुए जन सेवा कर रहे हैं। आप देखेंगे वन विभाग को छोड़कर शेष विभागों के कर्मचारी कैसे दिन काटा करते हैं। न रहने के लिए स्थान न काम करने के लिए उपयुक्त जगह और न ही खान पान की सुविधाएं। मैंने स्वयं देखा जहां पशु चिकित्सालय स्थापित किया गया है वहां एक छप्परनुमा कमरा ही कह सकता हूं जिस पर पड़ने वाली कोई ही बद-किस्मत वारिश की बूंद होगी जो अन्दर आने से वंचित रहती हो। ऊपर केवल आवरण मात्र ही तो है। यही कक्ष कार्यालय निवास सदन, पशु चिकित्सा, भोजनालय सब कुछ बनाने के लिए उपलब्ध हुआ है। दूसरे औषधालय का दरवाजा नाक रगड़ते हुए ही पार करना पड़ता है। जिसकी ऊंचाई दो फुट से कम ही होगी और भीतर आंखें खोलो या ना खोलो एक ही बात है।

उधर से केवल ६ मील बन्नी रह जाती है। ऊपर नीचे चलते हुए मार्ग पर बसे हुए चलाड़ सिलपड़ी, कुम्हार की माधा नाम के ग्रामों के निवासी गद्दी कहलाते हैं तथा भरमौरी भाषा वोलते हैं। रहन-सहन भी भरमौरी ही है। माधा ग्राम बन्नी से केवल डेढ मील पीछे स्थित है। इधर भी छोटा सा शक्ति का मन्दिर है जिसके बाहर एक किनारे पर छः-छः फुट ऊंची काठ की दो मूर्तियां

खड़ी की हुई हैं। इन्हीं के एक किनारे नागमूर्ति भी स्थापित की गई है। यहां के मन्दिर के विषय में लोगों का कहना है कि छाछ बिलोते हुए बुढ़िया की मथानी (मथनी) बर्तन में किसी पत्थर जैसी चीज से टकराई। जब उस ने हाथ डालकर देखा तो देवी की पिण्डी निकली। यही कारण है कि इस गांव का नाम माथा रखा गया। इस गांव और बन्नी के बीच एक नाला पड़ता है जो बहुत बाद श्रद्धालुओं को मन्दिर तक पहुंचने में बाधक बन जाता है। इसे पार करके थोड़ी सी चढ़ाई चढ़ने के बाद आज के युग में भी चमत्कारी काली मां का मन्दिर वर्तमान है।

रही भरमौर से होकर जाने की बात तो भरमौर से सिरड़ी, बडग्रां होती हुई छोटी सड़क सीधी बन्नी के इस ओर तक पहुंचने में थोड़ी सुविधा पूर्ण है। बन्नी, पर्वत श्रेणियों के मध्य एक श्रेणी की ढलान पर स्थित है। इधर एक श्रद्धालु ने धर्मशाला भी बना रखी है। शेष दो घर हैं। वे दो परिवार ही देवी के पुजारी, बाजीगर और चेले हैं। मन्दिर के इर्द गिर्द सीढ़ीनुमा खेत हैं जिन में गेहूं, जौ, मक्की, फुल्लन, कोद्रा आदि अनाज उत्पन्न होता है। लोगों का व्यवसाय भेड़-बकरियां पालना और उन्हीं से रोज़ी कमाना है। आचार-विचार पूर्ण रुढ़िवादी, जादू-टोना, भूत प्रेत, डाकिनी की विद्या मानता पर विश्वास रखते हैं। मन्दिर के अगले भाग में त्रिसूलों का बड़ा सा अम्बार पड़ा हुआ है जो श्रद्धालुओं द्वारा देव्यार्पण हुआ है। मन्दिर के अन्दर काली की दो धातु निर्मित प्रतिमाएं तथा परिक्रमा करते हुए एक कोने में बहुत सी त्रिशूलों और अर्ध निर्मित काली की लोह प्रतिमा देखने को मिलती है। आज से 36 वर्ष पूर्व मन्दिर नहीं बना था जिसे भरमौर के प्रसिद्ध नागा बावा ने बनवाया था। जिला की मन्दिर समिति का इस मन्दिर पर कोई नियन्त्रण नहीं और न ही कोई व्यवस्था है अतः काली की सब भेंट पुजारी की अपनी सम्पति बन जाती है। बन्नी को जाते हुए डुघोघ से आगे तथा भरमौर की ओर से जाते हुए मार्ग में कोई दुकान नहीं मिलेगी और कहीं-कहीं मार्ग भी ऐसा मिलेगा कि पैर फिसलना यमराज का आह्वान ही समझना चाहिए। कहीं-कहीं पत्थर भी गिरा करते हैं इसलिए सावधानी की आवश्यकता तो बनी ही रहती है। कुछ ऐसे भी स्थान आते हैं जहां रीछ, भालु आदि का भय रहता है। इसलिए साथियों की आवश्यकता पड़ ही जाया करती है।

अब आइए बन्नी की तथ्यता और ऐतिहासिकता पर। बात १७वीं शदी के अन्तिम चरण की है। औरंगजेब की धर्मान्धता एवं नीति से पीड़ित होकर कलकता से एक काली का उपासक त्राण पाने के लिए लक्ष्य-हीन यात्रा पर निकल पड़ा। वह ऐसे स्थान की खोज में था जहां धार्मिक कार्यों में बाधा न आ सकें। उसे वांछित था ऐसा भू भाग जहां उसकी शांति में विघ्न पड़ने की आशंका भी उत्पन्न न हो। जिस ओर पग ले चलें चलता ही रहा। न जाने चलने में ही कितने जीवन के दिन हवन कर डाले। अन्त में 'काली छो' नामक पर्वत पर 'छडोल्हा' नाम के स्थान पर पहुंचा। यह पर्वत बन्नी से उत्तर पूर्व के अनुमानतः १५ हजार फुट से अधिक की ऊंचाई पर लगभग ४५ किलोमीटर दूर है। आराम करने के विचार से एक छोटे से पत्थर के सहारे बैठकर पगड़ी उतारी और उसी पत्थर पर रखने लगा। तभी पगड़ी से एक छोटी सी त्रिशूल पत्थर पर गिर पड़ी। त्रिशूल को देखते ही उपासक विचार सागर में डूब गया। लम्बी यात्रा और लम्बा समय बीतने पर भी त्रिशूल का पगड़ी में फंसे रहना विचारने की हो तो बात थी। उसी उधेड़-बुन में

रात पड़ गई। इसलिए वहीं पड़े रहने के सिवाय चारा भी क्या था? ग्रास पास कोई वस्ती तो थी नहीं। इसलिए जिस पत्थर पर त्रिशूल गिरी थी उसी के सहारे सो गया। स्वप्न में काली मां ने जो कुछ कहा वह ग्रक्षरशः कोई नहीं जानता। पर हां! उस की पीढ़ी के लोग इतना कहा करते हैं कि उस व्यक्ति की वाणी पर काली माता का धरदान कार्य करता था। इस दुर्गम स्थान पर तब वह उपासक कैसे कहां से होकर पहुंचा इस का भी किसी को कोई ज्ञान नहीं। 'छडोल्हा' में उसकी कुछ पीढ़ियां ही रह सकी। जिसका कारण पर्वतीय कठिनाइयां रही होंगी। बाद में उक्त पर्वत की उपत्यका लियूंडी नामक स्थान पर काली की स्थापना करके उसके वंशज रहने लगे किन्तु यहां कि ग्रसुविधाएं भी सहन न कर सकने के कारण ग्राज से ग्रस्सी वर्ष पूर्व लूटे नाम का व्यक्ति लियूंडी से काली के थान (भण्डार) को बन्नी में लाकर रहने लगा। तब से काली मां के चमत्कारी प्रभावों से बन्नी की महत्ता बढ़ती ही जा रही है। पहले बन्नी तक मार्ग की दुर्गमता के फल-स्वरूप सिवाय भेड़ बकरियों के तथा उनके मालिक के ग्रौर लोग कम ही पहुंचा करते थे। परन्तु ग्रब गडरियों को लगे चमत्कारों तथा मार्ग ग्रच्छा हो जाने में लगभग बर्फ के दिनों को छोड़कर प्रतिदिन श्रद्धालु लोग चले ही रहते हैं। इसी मार्ग से होकर ५० हजार भेड़ बकरियां कुछ समय के लिए चराने लाहौल ले जाई जाती हैं। उपरोक्त काली छो को पार करने का समय सोलह ग्राषाढ़ से पच्चीस ग्राषाढ़ तक रहता है। इन्हीं दिनों में प्रत्येक गडरिया एक मोटा ताजा बकरा देवी को चढ़ा कर पर्वत लांघने की देवी से ग्राज्ञा लेता है। ऐसा करने पर भी देवी किसी एक गडरिये को ही ग्रागे चलने का ग्रादेश देती है। यदि कोई वैसा न करे तो उसे भारी हानि उठानी पड़ती है। पाठक कहेंगे देवी कैसे कहती है। तो बात यूं है कि देवी जिसे कांपा करती है वही चेला कांपता हुग्रा कहता है कि ग्रमूक व्यक्ति ग्रागे-ग्रागे चलेगा पर्वत चोटी से परली ग्रोर १० किलीमीटर नीचे लाहौल की चरागाहें ग्रा जाती हैं। यहां गद्दी लोग प्रति वर्ष कुछ दिन भेड़-बकरियों को चराया करते हैं।

भाद्रपद के तीसरे मंगलवार को बन्नी में काली माता का प्रतिवर्ष मेला लगता है। मेले में चोला डोरा पहने ग्रौर सिर पर निलगर फुलगर नामक पक्षी के चमकीले लाल हरे परों की कलगी वाली गर्म टोपी या पगड़ी पहने पुरुष ग्रौर लुंग्राचड़ी, डोरा दुपट्टा पहने विभिन्न भूषणों से लदी स्त्रियां बहुत ही भली लगती हैं। काली माता की जय-जय-कार से पर्वत की श्रेणियां गूंज उठती हैं। बकरों की बलियां, मनोरथ पूर्ति की मनौतियां खूब चलती हैं ग्रौर मन्दिर के खम्बों पर कई प्रकार के बन्धन बांधे जाते हैं। जब देवी मनोकामना पूर्ण करेगी तो वह बन्धन खोला जाएगा। प्रायः देखा जाता है कि ऐसा कोई ही दूर्भाग्यशाली होता होगा जिसकी इच्छा देवी पूर्ण न करती हो। इसलिए मैं कहूंगा "जय सर्वगते देवि, कालरात्रि नमोस्तु ते।"

मुहल्ला चौंतड़ा
जिला चम्बा, हिमाचल प्रदेश

गांव रिवाड़ी (कुल्लू) के सन्त स्व० राम लाल शर्मा

—ठाकुरदत्त शर्मा 'आलोक'

मैं उन्हें आज भी भूला नहीं हूं जिनका व्यक्तित्व निःसन्देह आकर्षक था। स्व० रामलाल जी शर्मा का सामाजिक प्रगति के क्षेत्र में जो सहयोग गांव रिवाड़ी को मिलता रहा उन प्रसंगों को लेकर विचार करने की आवश्यकता आज भी गांव रिवाड़ी में दीख पड़ती है। पं० रामलाल जी ने जो प्रेरणा गांव रिवाड़ी के लोगों को प्रदान की थी निःसन्देह आज भी वे प्रेरणायें स्थानीय लोगों के मध्य में सजीव हैं और आज भी आस पास के लोग पं० रामलाल जी की इन महत्वपूर्ण प्रेरणाओं से प्रेरित हैं। पं० रामलाल जी जब तक जीवित रहे तब तक गांव में तू-तू मैं करता कोई भी बाल, वृद्ध, नर, नारी नहीं दीख पड़ता था, उनके व्यक्तित्व प्रभाव से सभी लोग शान्ति के पूजारी बन गये थे। पं० रामलाल जी बहुत बड़े विद्वान थे, जैसा कि मुझे याद है गांव के सभी लोग उनके पास घण्टों बैठे रहते और उनके ज्ञानमय वचनों का सुश्रवण करते रहते थे। जब मैं बालक था तो मैं अपने पूज्य पिता जी श्री सकलदेव शर्मा के साथ कभी-कभी उनके चरणों में अवसर प्राप्त कर लिया करता था।

एक बार जब मैं पिता जी के साथ उनके यहां गया तो उन्होंने हमारे अभिवादन करने से पूर्व ही कह दिया, "भाई सकलदेव शर्मा तेरो अ छोटू बड़ो ही शोभला आसा ऐंण दस तें एऊ लै किलै बोलो की तू व्रत डाह।" अर्थात् भाई सकलदेव शर्मा तेरा यह लड़का बहुत ही अच्छा है तूने इसे व्रत रखने के लिए क्यों प्रेंरित किया है। मेरे पिता जी बोले पण्डित जी क्या कहूं यह पण्डित मानता ही नहीं है। पिता जी उन दिनों मुझे प्यार से पंडित कह कर पुकारते रहे हैं।

उत्तर में पं० रामलाल बोले "भाई साहब जेबा तीं मां बाप भाड़ा जिऊंदै हुआ तेवा तीं इन्हां माठै शोरू लै व्रता डाणे जरूरता ही नहीं हौंदी।" स्थानीय भाषा में उनका यह आध्यात्मिक सत्य से भरा उत्तर था कि जब तक माता-पिता जीवित होते हैं अर्थात् माता पिता का आशीर्वाद जब तक बालकों के सिर पर होता है तब तक बालकों को व्रत इत्यादि रखने की आवस्कता नहीं होती। फिर पिता जी बोले "यह मानता ही नहीं जिद्दी है हठ करता है। पं० रामलाल शर्मा जी ने तत्पश्चात् मुझे कहा, "बेटा! अच्छा भाई तेरी मर्जी आ जै डाई सका ता आच्छो आ। अर्थात् "बेटा! तुम्हारी मर्जी है रख सकते हो तो अच्छी बात है।" आज भी उनके कहे यह शब्द मेरे मस्तिष्क से जब टकराते हैं तो मेरे मानस पटल पर उनका आलोकमय व्यक्तित्व आज भी चित्रित होने लगता है।

सचमुच वे गांव रिवाड़ी में देव दूत बन कर अवतरित हुए थे। गांव की नारियां जितने भी मंगल गीत तीज-त्यौहार के अवसरों पर गाती हैं उन गीतो में असंख्य गीतों को उन नारियों ने

पं० रामलाल जी से सीखा है। पं० रामलाल जी ने उन मंगल गीतों को स्थानीय बोली में संस्कृत से परिणत कर उन नारियों के गाने योग्य स्थानीय बोली में सुलभ करा दिया था।

यद्यपि पं० रामलाल जी इतने सुशिक्षित नहीं थे किन्तु फिर भी उन्होंने वेद-शास्त्रों का ज्ञान भली-भांन्ति कण्ठस्थ ही नहीं जीवन में भी अपना लिया था जब तक वह जीवित रहे गांव रिवाड़ी को उन्होंने बाहरी सिराज कुल्लू का स्वर्ग बना दिया। आस-पास के गांव के लोगों को भी उनके सुन्दर मार्ग दर्शन से अपार प्रेरणा मिलती रही। पं० रामलाल जी ने स्थानीय लोगों को सुशिक्षित होने की अपार प्रेरणा प्रदान की, यही कारण है कि सारे सिराज कुल्लू में गांव रिवाड़ी में काफी पढ़े लिखे लोग दीख पड़ते हैं। गांव रिवाड़ी की 'शांगरी' क्षेत्र में भी लोग प्रशंसा करते हुए पाए गए हैं। पं० रामलाल जी सचमुच अद्‌भुत् प्रतिभा के धनी थे। प्रबल आश्चर्य होता है जो सुखद भी है कि गांव रिवाड़ी में इस प्रकार की प्रतिभा का धनी यह महान् व्यक्तित्व यहां के जन-जीवन को सही दिशा निर्देश देता रहा है। सिराज कुल्लू जैसे पिछड़े क्षेत्र में यह निसन्देह आश्चर्य की बात जान पड़ती है।

बीस-पच्चीस वर्षों से पूर्व गांव रिवाड़ी से ८०-९० किलोमीटर दूर शिमला भी विदेश जान पड़ता था इससे इस क्षेत्र की स्थिति का सही अनुमान लगाया जा सकता है। मेरा अन्तरमन आज भी कह उठता है कि सचमुच पं० रामलाल जी बहुत ही विद्वान थे। आसपास के अनेक जनपदों में उनकी कद्र थी। गांव रिवाड़ी में उनके रहते, किसी चोरी, डकैती, लड़ाई झगड़ा, गाली-गलोच, मांस-मदिरा का नाम भी नहीं सुनाई पड़ता था। आज भी गांव उनके ही कारण लोग किसी भी व्यसन के विशेष व्यसनी नहीं है। लोग उनके चरण-कमल की धूलि मस्तक पर लगाते थे। सचमुच ईश्वर ने उन्हें विलक्षण प्रतिभा प्रदान की थी। वे स्थानीय लोगों के लिए सांस्कृतिक समृद्धि के वैतालिक, व्यवहारिक जीवन के सूक्ष्मातिसूक्ष्म व्याख्याकार थे। साधारण किन्तु सुबोध भाषा में उन्हें विचारों को व्यक्त करने में अत्यन्त कौशल प्राप्त था। वे गांव के लोगों के झुण्ड के मध्य में बैठकर अपने तर्कों से उन्हें प्रभावित करते थे। ग्रामवासी फिर जगह छोड़ने का नाम तक न लेते थे। फिर ऐसे विद्वान का गांव रिवाड़ी के लोगों पर पांडित्य पूर्ण प्रभाव होना स्वाभाविक ही था जिसे ग्रामवासी आज भी भूले नहीं।

जैसा कि वर्णनातीत है कि पं० रामलाल जी अधिक पढ़े लिखे नहीं थे मात्र उन्होंने चौथी श्रेणी तक शिक्षा प्राप्त की थी। शेष शिक्षा-दीक्षा पं० जी की उनके घर पर ही सम्पन्न हुई। जिस शिक्षा का मूल्यांकन आज के प्रमाण पत्रों के आधार पर करना भूल होगी। स्व० पं० रामलाल जी को ज्ञान की प्राप्ति कैसे हुई इसकी एक अद्‌भुत किन्तु मनोरंजक कहानी है। उन्होंने यह कहानी मेरे ग्रामीण बाल मित्र श्री चांदमल शर्मा के समक्ष मुझे सुनाई थी तब मैं बालक ही था मगर आज भी वह कहानी मैं भूला नहीं हूं। पं० रामलाल जी ने अपनी कहानी जो ज्ञान प्राप्ति से सम्बद्ध है इस प्रकार व्यान की थी।

"जब मेरे पिता जी मुझे पढ़ाते थे तो उनके अन्दर क्रूरता का भाव अधिक रहता था। कभी-कभी वह मुझे बेरहमी से पीटा भी करते थे। एक दिन भी उन्होंने मुझे खूब पीटा और मैं बहुत रोया, यहां तक कि मैंने मरने का प्रण कर लिया। उनके द्वारा पढ़ाये जाने वाले पाठ को मैं भय के कारण समझ भी नहीं पाता था। मैं घर से भाग गया। जब मैं घर से थोड़ी दूह खौहधार नामक घाटी के पास पहुंचा वहां एक साधु मुझे मिला और बोला बेटा तू कहां जा रहा है? मैं बोला जी "मूं चालो मरदो" (मैं मरने जा रहा हूं)। साधु को मैंने पिता जी के साथ घटित सारी वारदात भी सुना दी। फिर साधु ने मुझे कहा कि तुम बेटा या तो एक रात नदी के किनारे पर भगवान का ध्यान करो या किसी पहाड़ पर जा कर। फिर वह साधु न जाने कहां चला गया। बालक होने के कारण मैं उससे अधिक पूछ भी नहीं सका और न ही उस दैवी पुरुष के व्यक्तित्व से उतना प्रभावित हुआ जितना कि आज अपने आपको प्रभावित हुआ पाता हूं। फिर मैंने सोचा नदी तो सात मील दूर है, रात को कहां जाऊंगा। फिर तो मौत का डर ही न रहा। उन दिनों वैसे घर से बाहर बरांडे में भी रात को निकलने में डर लगता था। खैर मैं 'माईये टिलरु' पहाड़ पर चला गया और रात भर वहां भगवान का नाम याद करता रहा। फिर जब सुबह हुई तो मुझे कुछ प्रकाश सा दिखाई दिया और मैं सवेरा होते ही घर वापिस आ गया। न तो पिता जी ने पूछा कि तू रात को कहां रहा और न मैंने कुछ बताया। हां जब मैंने शाम को उनसे पढ़ना शुरू किया तो मैंने उनको उन कठिन शब्दों के अर्थ भी बता दिए जिन का अर्थ पिता जी को भी नहीं आता था।"

स्व० पं० रामलाल जी यह कहानी कुछ तो हिन्दी भाषा में ही सुनाई थी और कुछ स्थानीय भाषा में जिसे मैंने सरल शब्दों में उनके शब्दों के साथ साम्य रखते हुए स्पष्ट कर दिया है। यहां यह बात भी महत्वपूर्ण जान पड़ती है कि पं० जी ने यह कहानी मेरे उस बाल मित्र तथा मुझ पर प्रसन्न हो कर सुनाई थी हम दोनों मित्र पशुओं को धीरे-धीरे हांकते हुए घर की राह पर चल रहे थे और हमारे हाथों में पशुओं को हांकने की जो छोटी सी छड़ी थी उस छड़ी से मैं और मेरा वह बाल मित्र चांदमल शर्मा कच्ची सड़क पर 'राम' 'सीता' का नाम लिखते हुए आगे बढ़ रहे थे। वह हमारे पीछे कुछ ही दूरी पर थे फिर तेज-तेज कदमों से उन्होंने हमारा पीछा किया और सड़क पर लिखे उन शब्दों को पढ़ने के बाद प्रसन्न होकर बोले—"मैं तुम से प्रसन्न हूं तुमने गन्दे बच्चों की तरह सड़क पर अभद्र बात नहीं लिखी है। पर बेटा भगवान का नाम भी सड़क पर इस तरह मत लिखा करें क्योंकि फिर भगवान का अस्तित्व जन मानस में धूमिल पड़ जाता है।"

स्व० पं० रामलाल जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से मुझे और मेरे उस बाल मित्र को समझा कर हमें शाबास देकर अपनी कहानी सुनाई थी जो आज भी भूली नहीं है।

भाषा शिक्षक,
श्री सनातन धर्म उच्च विद्यालय,
शिमला–१७१००१

कांगड़ा जनपद का प्रसिद्ध लोक-संगीत 'सुहाग'

–विमला कुठियाला

कांगड़ी लोक-गीतों में 'सुहाग' अति हृदय-स्पर्शी हैं। ये कन्या के विवाह की निश्चित तिथि से आरम्भ कर दिए जाते हैं और 'विवाह संस्कार' के बीच भी यथा समय गाये जाते हैं। लड़की के विवाह के गीतों को तीन भागों में बांटा जा सकता है। विवाह से पहले, विवाह शुरू होने पर देवमण्डल के आह्वान, कुलदेवी की स्थापना तथा 'बटणे' समूहत के लोक-गीत और बिदाई गीत। विवाह जीवन का परम पावन संस्कार है। हमारे मनीषियों ने इसे मानव जीवन के सोलह संस्कारों में बहुत महत्वपूर्ण बताया है। विवाह की कल्पना मात्र से ही 'वर कन्या' को रोमांच सा होने लगता है। परन्तु इससे पूर्व एक दूसरे के गुणों अवगुणों की जानकारी प्राप्त करना परम-आवश्यक है। हमारे लोक गायक 'छन्द अलंकार' युक्त गीतों का कुशलता से सृजन करते हैं। प्रस्तुत है सुहाग बेटी सब सगे सम्बन्धियों से योग्य वर ढूंढ़ने की प्रार्थना करती है।

दादु इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
बेटिए मैं वर अंदा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबे दा तोड़ के।
बाबा इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
बेटिए न कर मन पछतावड़ा, तेरी दादी गोरी दादु सांवला।

बाँ इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
बेटिए मैं वर अंदा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबें दा तोड़ के।
बाँ इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
बेटिए न कर मन पछतावड़ा, तेरी माई गोरी बाँ सांवला।

ताऊ इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
बेटिए मैं वर अंदा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबे दा तोड़ के।
ताऊ इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
बेटिए न कर मन पछतावड़ा, तेरी ताई गोरी ताऊ सांवला।

चाचा इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
बेटिए मैं वर अंदा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबे दा तोड़ के।
चाचा इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
बेटिए न कर मन पछतावड़ा, तेरी चाची गोरी चाचा सांवला।

वीरा इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
भैंणे मैं वर श्रंबा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबे दा तोड़ के।
वीरा इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
भैंणे न कर मन पछतावड़ा, तेरी भाभी गोरी भाई सांवला।
मामा इक साड़ा कैहणा लीजिए, सानुं राय सजन वर दीजिए।
भाणजीए मैं वर श्रंदा टोल के, जिजा फुल्ल गलाबे दा तोड़ के।
मामा इक पछतावा मन रेहा, मैं तां आप गोरी वर सांवला।
भाणजिए न कर मन पछतावड़ा, तेरी मामी गोरी मामा सांवला।

इस समय सभी को अपने विवाह की याद आ रही है।

पिता से बढ़ कर बेटी का शुभ चिन्तक अन्य कौन हो सकता है? बेटी समय पाकर पिता से अपने मन की बात कहती है। लोक-नायिका उसके भावों को इस प्रकार प्रकट करती है:

अजी मेरे बॉआ जंगल देश न देईं मेरी बॉआ न देइं मेरे रौआ जंगल देस डरौवणा है।
अजी मेरे बॉआ जंगल देस कोई रूख बी नाहीं,
कोई बूटा नाहीं, कैदिया छौंआ बाबल मैं बौणा है?
अनी मेरी बेटी जंगल देस मरूए केआरी, को सरूए केआरी
ऊदिया छौंआ बेटिए तें बौणा है—
अजी मेरे बॉआ जंगल देस कोई खूआ बी नाहीं,
कोई बौडी बी नाहीं, ऊदा तां पाणी बेटिए तें पीणा ए—
अजी मेरे बॉआ हत्थ बुहारी कोई सिर पर खारी, कोई सिर पर खारी
मरूए तां हुंजण बाबल मैं चली......ए
अजी मेरे बॉआ मरूए तां हुंजदिया जी कंडा जी मुड़्या, कंडेला जी मुड़्या
कुजो दसां ए कांडला .... ए
अजी मेरे बॉआ कौण कढ़े मेरे पैरे दे कंडले, कोई उंगली दे कंडडे
कौण सहे मेरी पीड़ली ए ....
अनी मेरी बेटी भावों कढ़े तेरे पैरे दे कंडडे, कोई उंगली दे कंडडे
वीर सहे तेरी पीड़ली .... ए
अजी मेरे बॉआ कौण खोले मेरे चोले दियां तणियां, यह रेशमी तणियां
कौण हूंजे मेरा हूंजणा.........ए
अनी मेरी बेटी मामी खोले तेरे चोले दियां तणियां, यह रेशमी तणियां
माई हूंजे तेरा हूंजणा........ ए

प्रत्येक माता-पिता की यही इच्छा होती है कि उनकी बेटी सुखी सम्पन्न परिवार में जाए और राज करे आगे उसके संजोग हैं—"घर बी मैं टोलया बेटिए, वर वी टोलया, लेख टोले नहीं जांदे।"

निम्न 'सुहाग' में बेटी अपने सगे सम्बन्धियों से क्रमश: दूर न देने की विनता करती है :

उच्चड़ा कोट लुहार दा, जित नीमे न कोई,
नीमे गा लाडो दा बाँ जिदी धियो कुआरी।
इक अरज दूजी विनती बाँआ दूर न देईं,
पैरां दियां घसी जांदियां झांझरां नैणे निद आई।
मोरे ने पायल पाई है बाँआ देखी के डरया,
तुसां कैंजो डरे मेरे बाँआ जग हुन्दड़ी होई।
उच्चड़ा कोट लुहार दा जित नीमे न कोई,
नीमे गा कुड़िया दा ताया जिदी धियो कुआरी।
इक अरज दूजी विनती ताया दूर न देईं,
पैरां दियां घसी जांदियां झांझरां नैणे निंद न आई।
मोरे ने पायल पाई है ताया देखी के डरया,
तुसां कैंजो डरे मेरे ताया जी जग हुन्दड़ी होई।
उच्चड़ा कोट लुहार दा जित नीमे न कोई,
नीमे गा लाडो दा चाचा जिदी भतीजी कुआरी।
इक अरज दूजी विनती चाचा दूर न देईं,
पैरां दियां घसी जांदियां झांझरां नैणे निंद न आई।
मोरे ने पायल पाई है चाचा देखी के डरया,
तुसां कैंजो डरे मेरे चाचा जी जग हुन्दड़ी होई।
उच्चड़ा कोट लुहार दा जित नीमे न कोई,
नीमे गा लाडो दा वीरा जिदी भैंण कुआरी।
इक अरज दूजी विनती वीरा दूर न देईं,
पैरां दियां घसी जांदियां झांझरां नैणे निंद न आई।
मोरे ने पायल पाई है वीरा देखी के डरया,
तुसां कैंजो डरे मेरे वीरा जी जग हुन्दड़ी होई।
उच्चड़ा कोट लुहार दा जित नीमे न कोई,
नीमे गा लाडो दा मामा जिदी भाणजी कुआरी।
इक अरज दूजी विनती मामा दूर न देईं,
पैरां दियां घसी जांदियां झांझरां नैणे निंद न आई।
मोरे ने पायल पाई है मामा देखी के डरया,
तुसां कैंजो डरे मेरे मामा जी जग हुन्दड़ी होई।

दूर जाने में बेटी इसलिए कतराती है कि कभी कभार मां, ताई, चाची, बहिन, भाभी और मामी से मिलने का मन करेगा तो कैसे आ पाएगी? इतनी दूर चलते-चलते तो पांव के पायल भी घिस जाएंगे, आंखों से नींद भी भाग जाएगी। पहले आवागमन के साधन सुलभ नहीं थे। बहु

बेटियों को प्राय: पैदल ही मायके-ससुराल आना जाना पड़ता था। सावन में जब खेतों में मोर नाचते हुए दिखाई देते हैं तो सभी यह सोच कर उदास हो जाते हैं कि एक दिन हमारी बेटी भी इसी प्रकार अपने पारिवारिक सुख में हमें भूल जाएगी। उनकी यह दशा देख कर बेटी ढ़ाढ़स देती है और कहती है कि संयोग-वियोग तो संसार का प्रचलन है, अटल नियम है। सभी को अपनी बेटियां पराए घर में भेजनी है और दूसरों की अपने घर लानी है, इसमें डरने की कोई बात नहीं है।

सुहाग मंगण दादे दे गई है,
बाबा तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
बेटिए हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
बेटिए भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
सुहाग मंगण बॉए दे गई है,
बॉग्रा तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
बेटिए हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
बेटिए भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
सुहाग मंगण ताउए दे गई है,
ताया तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
बेटिए हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
बेटिए भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
सुहाग मंगण चाचे दे गई है,
चाचा तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
बेटिए हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
बेटिए भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
सुहाग मंगण वीरे दे गई है,
वीरा तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
भैंणे हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
भैंणे भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।
सुहाग मंगण मामे दे गई है,
मामा तुसी साड़े चतर सजान, सुहाग सानुं तुसी देणा है।
भाणजिए हत्थ मैंहदी सीस डोरी, बाहीं चूड़ा लाल,
भाणज्िए भरी ल्यायो मांग सन्दूर, सुहाग तैंनूं राम देवेगा।

उक्त 'सुहाग' में बेटी सब बड़ों से अटल-सुहाग प्राप्ति के लिए आशीर्वाद लेने जाती है। सब सम्बन्धी उसे सौभाग्यवती नारियों के चिन्ह धारण करने और मांग में सिन्दूर सजाकर 'सुहागवती' होने की आशीष देते हैं। अन्त में सभी की शुभकामना है कि प्रभु राम उसे सदा सौभाग्य प्रदान करें।

निम्न सुहाग में घर के शुभचिन्तक प्रमुख व्यक्ति उसे ससुराल में जाकर सबके प्रति अपना कर्त्तव्य पालन करने, व्यवहार कुशल बनने एवं सहनशील होने का उपदेश देते हैं।

बेटी दादुए बेड़े गई है, सुहाग मंगण गई है।
दादुए ओ वर दित्ता, सो वर दित्ता,
नीठयां होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैंहणा श्री राम राम कैंहणा,
अत्तरे सीसी होई ने रैंहणा श्री राम राम कैंहणा।
केसर तरियां होई ने रैंहणा श्री राम राम कैंहणा,
सब दा कैंहणा सिर ते सैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
बेटी बॉए बेड़े गई है, सुहाग मंगण गई है।
बॉए ओ वर दित्ता, सो वर दित्ता,
नीठयां होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा,
अत्तरे सीसी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
सब दा कैंहणा सिर ते सैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
बेटी ताये बेड़े गई है, सुहाग मंगन गई है।
ताये ओ वर दित्ता, सो वर दित्ता,
नीठयां होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
अत्तरे सीसी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
सब दा कैंहणा सिर ते सैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
बेटी चाचे बेड़े गई है, सुहाग मंगण गई है।
चाचे ओं वर दित्ता, सो वर दित्ता,
नीठयां होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
अत्तरे सीसी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
सब दा कैंहणा सिर ते सैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
बेटी वीरे बेड़े गई है, सुहाग मंगण गई है।
वीरे ओ वर दित्ता, सो वर दित्ता,
नीठयां होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
अत्तरे सीसी होई ने रैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
सब दा कैंहणा सिर ते सैंहणा, श्री राम राम कैंहणा।
बेटी मामे बेड़े गई है, सुहाग मंगण गई है।

मामे ओ वर दित्ता, सो वर वित्ता,
नीउयां होई ने रैहणा, श्री राम राम कैहणा।
फुल्ल गलाबी होई ने रैहणा, श्री राम राम कैहणा।
अत्तरे सीसी होई ने रैहणा, श्री राम राम कैहणा।
सब दा कैहणा सिर ते सैहणा, श्री राम राम कैहणा।

वस्तुतः यदि गम्भीरता पूर्वक विचार किया जाए तो ज्ञात होता है कि लोकगायक ही सच्चे जननायक होते हैं। ये ही समाज के निरीक्षक व नियामक हैं। वे तत्कालीन समाज का सिंहावलोकन करके इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि कन्या अर्थात् भावी माता ही सशक्त समाज की निर्माता है। अतः उपरोक्त सुहाग में अल्हड़ युवती को विवाहित जीवन आरम्भ करने से पूर्व परिजनों के मुखारविन्द से ऐसा जीवनोपयोगी उपदेश दिलवाया गया है- जिससे वह कभी पारिवारिक मर्यादाओं की परिधि का उल्लंघन न कर सके। वह सुखद परिवार की सुन्दर कल्पना लेकर ससुराल जाएगी, उसके अभद्र व्यवहार से वह सुनहरी स्वप्न कहीं बिखर न जाए। उसकी कतरनी सी जिह्वा नित्य प्रति घर में कुहराम न मचाए। इसीलिए लोक कवि ने सब से पहले नम्र बन कर रहने को कहा है। क्योंकि नम्रता में शेष सभी गुण समाहित हैं। दुःख सुख में गुलाब के फूल की तरह खिले हुए रहने की अनुमति दी है। यदि वह स्वयं ही मुरझा जाएगी, धैर्य छोड़ देगी तो पति का संबल कैसे बन सकेगी। फिर इंगित किया है कि इत्र के समान बनकर रहना अर्थात् अपने सद्गुणों की सुगन्धि फैलाना, केसर की पंखुड़ियों की तरह स्निग्ध बने रहना, माथे पर कभी शिकन न आने पाए, अन्त में सबने कहा है–सबका कहना सिर पर सहना भाव है, जिसने जो कह दिया, वह सह लिया, बदले में कुछ न कहना। इन गुणों के साथ प्रभु नाम का स्मरण अत्यावश्यक है, ऐसी अनूठी शक्ति प्रभु के जाप से ही प्राप्त होती है। सच्चाई तो यह है कि जिस परिवार में दिव्य गुणों से भरपूर लक्ष्मी सी बहू होगी वहीं सर्व सुख होगा। 'वर' के दो अर्थ हैं–वरदान और पति। अन्त में भाई अपनी लाडली बहिन को पूर्ण यौवन सम्पन्न वर प्राप्त होने का वरदान देता है। परन्तु यौवन की मदहोशी में उल्लिखित को अपनाने के लिए भी सतर्क किया है। जिससे उसकी गुणवती बहिन अपनी व्यवहार कुशलता से दोनों खानदानों का नाम उज्जवल कर सके।

कचनार बैठी बीबी पान चबदी,
करदी है बॉम्र जी दियाँ मिनताँ।
बॉम्र देस जाइए, प्रदेस जाइए,
हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए,
इक रात रहिए उस दा गोत पुछिए,
जनम लगन गणाइए।
इक आप दल, दूजा बाप दल,
तीजा तां दल उस लड़के दा
जो सेहरा लाई ब्यामण आयेगा।

कचनार बैठी बीबी पान चबदी,
करदी है ताया जो दियाँ मिनताँ ।
ताया देस जाइए परदेस जाइए,
हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए,
इक रात रहिए उस दा गोत पुछिए,
जनम लगन गणाइए ।
इक श्राप दल, दूजा बाप दल,
तीजा तां दल लड़के दा
जो सेहरा लाई ब्यामण श्रायेगा ।
कचनार बैठी बीबी पान चबदी,
करदी है चाचा दियाँ मिनताँ ।
चाचा देस जाइए परदेस जाइए,
हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए,
इक रात रहिए उस दा गोत पुछिए,
जनम लगन गणाइए ।
इक श्राप दल, दूजा बाप दल,
तीजा तां दल उस लड़के दा
जो सेहरा लाई ब्यामण श्रायेगा ।
कचनार बैठी बीबी पान चबदी,
कर दी है वीरा जी दियाँ मिनताँ ।
वीरा देस जाइए परदेस जाइए,
हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए,
इक रात रहिए उस दा गोत पुछिए,
जनम लगन गणाइए ।
इक श्राप दल, दूजा बाप दल,
तीजा तां दल उस लड़के दा
जो सेहरा लाई ब्यामण श्रायेगा ।
कचनार बैठी बीबी पान चबदी,
कर दी है मामा जी दियाँ मिनताँ,
मामा देस जाइए परदेस जाइए,
हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए,
इक रात रहिए उस दा गोत पुछिए,
जनम लगण गणाइए ।
इक श्राप दल, दूजा बाप बल,
तीजा तां दल उस लड़के दा
जो सेहरा लाई ब्यामण श्रायेगा ।

उपरोक्त 'सुहाग' में लोकगायक अति बुद्धिमान प्रतीत होता है। वह कन्या का प्रतिनिधित्व करता हुआ, उसके मनोभावों के अनुसार सगे सम्बन्धियों से जो कचनार की डाली पर बैठी पान चबा रही है अर्थात् अबोध है, प्रार्थना कर रहा है कि पिता जी आप देश और विदेश में जाकर मेरे गुण-स्वभाव से मिलता-जुलता वर ढूंढ़ लाइए। भाव है कि कहीं वृद्ध या बेजोड़ वर मेरे लिए न खोजना और पास पड़ोस से पूछ कर या साधारण नजर डाल कर ही वापस न आ जाना। एक रात उनके घर में रहना क्योंकि दिन में प्रायः व्यक्ति बाह्याडंबरों से घिरा हुआ होता है। रात को फुर्सत भी होती है तथा रहन-सहन व बातचीत के ढंग का आभास हो जाता है। तसल्ली से बात करना और उनके गोत्र का पता लगाना।

एक तो आपका अपना पक्ष होगा, 'बापदल' में सम्भवतः नानका गोत्र होगा और 'तीजे दल' में उस लड़के का गोत्र पूछना जो सेहरा लगा कर आएगा। उसके विषय में भली भांति छानबीन कर लेना ताकि विवाह के बाद ऐसी वैसी कोई बात न उठे जिससे लड़के लड़की का जीवन बोझ बन जाए। इस लोकगीत में अन्तर्जातीय व अन्तर्राष्ट्रीय विवाह का भी समर्थन है। 'देश जाइये परदेश जाइये, हमरी जोड़ी दा वर टोल ल्याइए' यदि देश में सजातीय वर न मिले तो मेरी जोड़ का अन्तर्जातीय वर ही ढूंढ लाना ऐसा ज्ञात होता है कि हमारे लोक-कवि 'उदार तु वसुधैव कुटुम्बकम्' के समर्थक भी थे। अनमेल विवाहों में कितना विषाद एवं परिताप होता है। यह निम्न 'सुहाग' में वर्णित है :

बेटी पाली है जी सजरे मक्खणे दे नाल,
लाडो पाली है जी सजरे मक्खने दे नाल,
पंडत राज्या जी ऐड़े जोड़ न तू जोड़,
वरां देया दातया जी ऐड़े जोड़ न तू जोड़
ऐड़े तां जोड़ न जोड़ पंडिता तुदी अग्गे जाई है,
इक मेरी हंसली गल काग बधा देख मन पछताई है
असीं चम्बे डालियां जी काग बेहालया साड़े कोल
बस नहीं चलदा जी रावल जादड़े दे नाल
चन्द चढ़या चुंड कढ़या तारयां मैं गिण रही
इक मेरा मूरख माणु पेया रेले लूण मांगर गल रही
अजी मूरखा जी तुद गनेरियाँ परचित
मूरख माणुआ जी तुद गनेरियाँ परचित
तुदे गनेरियाँ परचित मूरख बागे मंजे जाइए
दाडू ताँ दाखाँ नार पक्के किब बड़ा न खाइए
अनी मेरी बेटिए नी तूं कर सूएयाँ दा भेस
साहबजादिए नी तूं कर सूएयाँ दा भेस
सूए ताँ कपड़े पहन बेटी कंत सेजा जाइए
दीया ताँ रखिए बाल झरोखे गल्लड़ियाँ समझाइए।

ऊपर लिखे 'सुहाग' की मर्मान्तिक पीड़ा का अनुभव सहृदय मानव सहज ही कर सकता है। आदि पंक्ति मां के वात्सल्य से आरम्भ हुई है। उसने बटी ताजे मक्खन के साथ पाल-पोष कर बड़ी की है। अन्तिम पंक्तियां भी माता के सदुपदेश से ही सम्पन्न हुई हैं। मध्यम पंक्तियों में लाड़ली बेटी की हार्दिक खिन्नता स्पष्ट झलकती है। उस के पल्ले महामूर्ख पति पड़ गया है। सबसे पहले वह पंडित को दोष देती है, जिसने उसका दुर्भाग्यपूर्ण जोड़ जोड़ा है। संभवतः यही कारण रहा होगा कि सभी 'सुहागों' में कन्या अपने सगे सम्बन्धियों से स्वयं जाकर तसल्ली करने व वर खोजने के लिए विनती करती है। इस से पूर्व लोग नाइयो, पुरोहितों और पीढ़ितों पर अन्ध-विश्वास करके अपनी लाड़ली के लिए वर उन्हीं को ढूंढने भेजते थे। 'कहीं की ईंट कहीं का रोड़ा, भानमती ने कुनवा जोड़ा' इसको वे चरितार्थ करते थे। कुछ दिन मूर्ख पति के साथ रह कर जब वह पहली वार मायके आती है तब पण्डित को आड़े हाथों लेती है। वह कहती है, हे पण्डित आप लाखों कन्याओं को 'वर' देने वाले हैं। आप को इतना मालूम नहीं था कि मैं 'हंसिनी' हूं और आप ने मेरे गले में कौआ बांध दिया। पण्डितराज मुझे तुम्हारे पांडित्य पर अफसोस है। मैं चम्पा की कोमल शाखा हूं और आपने काला कौआ (अयोग्य वर) मेरे पास बैठा दिया। मेरी इस रायजादे के साथ कोई पेश न गई। अपनी मां से ठण्डी आहें भरती हुई कहती है – स्वच्छन्द आकाश में पूनम का चांद हंसता है और मैं घूंघट निकाले बैठी रहती हूं। घूंघट की ओट में चांद तो मुझे धुंधला सा लगता है परन्तु तारों को गिनकर मैं रातें गुजारती हूं। वह अपने पति पर झल्लाती हुई कहती है कि एक मूर्ख व्यक्ति मेरे पास पड़ा रेंगता रहता है, मैं नमक की भांति गली जा रही हूं।

पति को सम्बोन्धित कर मन ही मन खिन्न होती है—अरे मेरे मूर्ख तू गहरी नींद में सोता है, ओ बेखबर! तुझे मेरी हालत से क्या? वह उन्मादिनी मूर्ख पति से जागने पर कहती है—"बाग में जाओ, वहां दाड़ू, दाख (अंगूर) और अनार पक कर मीठे हो गए हैं। पर देखना खट्टा (किंब, गलगल) अधिक न खाना, तनिक भी न खाओ तो बहुत अच्छा है। भाव है कि पके हुए फल ही खाना। लोक गायक ने व्यंजना अति निपुणता से प्रयुक्त की है और सुन्दर रूपक बांधने में भी पीछे नहीं रहा है। अनुभवी मां ने बेटी को समझाया कि तू नई नवेली दुल्हिन का रूप व वेश धारण करना, शयन कक्ष की खिड़की में दीपक जलाकर रख लेना भाव यह कि अंधेरे में इस मूर्ख को न तो कुछ दीखेगा और न ही दिमाग में कुछ ठुंसेगा, नींद ही आएगी। फिर इसके पलंग पर जाकर बड़े प्यार से सब बातें समझाना। मां ने दूरदर्शिता से काम लेने का सुझाव दिया और कहा कि जो तेरे भाग्य में था सो तुझे मिल गया। अब तू बुद्धिमता से इसी को अपने अनुरूप बना। यदि किसी आधुनिक मां की लाडली बेटी के साथ ऐसा घटित हुआ होता तो वह निःसन्देद यही कहती – "उठा अपना माल मत्ता, चल बाप के घर, मरने दे इस मूर्ख निखट्टू को तेल देख और तेल की धार देख, नहीं तो तलाक दे देना।" बुराई को बुराई से दूर नहीं किया जा सकता। नीति कुशल लोक कवि इस समय में जागरूक थे।

बहुत पहले बचपन की शादियां होती थीं। लड़कियों का खेल कूद में अधिक ध्यान रहता था। घर के बुजुर्ग लोग उन्हें खेलने नहीं देते थे। बाल मनोभावों की पुष्टि में प्रस्तुत है निम्न सुहाग :

चंदे दी चाँदनी रात मेरे बाँग्रा जी, कुड़ियाँ नूं खेलणा दे,
तेरे दर खेली सो खेली मेरे बाँग्रा जी, सस्स न खेलणा दे।
दिने करांदी है कम्म मेरे बाँग्रा जी, राती कसीदड़ा दे।
चंदे दी चानणी रात मेरे ताया जी, कुड़ियां नूं खेलणा दे,
तेरे दर खेली सो खेली मेरे ताया जी, सस्स न खेलणा दे,
दिने करांदी है कम्म मेरे ताया जी, राती कसीदड़ा दे।
चंदे दी चानणी रात मेरे चाचा जी, कुड़ियां नूं खेलणा दे,
तेरे दर खेली सो खेली मेरे चाचा जी, सस्स न खेलणा दे,
दिने करांदी है कम्म मेरे चाचा जी, राती कसीदड़ा दे।
चंदे दी चानणी रात मेरे बीरा जी, भैंणा नूं खेलणा दे,
तेरे दर खेली सो खेली मरे बीरा जी, सस्स न खेलणा दे,
दिने करांदी है कम्म मेरे बीरा जी, राती कसीदड़ा द।
चंदे दी चानणी रात मेरे मामा जी, भाणजियां खेलणा दे,
तेरे दर खेली सो खेली मामा जी, सस्स न खेलणा दे,
दिने करांदी है कम्म मेरे मामा जी, राती कसीदड़ा दे।

कन्याओं के खेल कूद में लगे रहने के कारण उनका सिलाई-कढ़ाई का सामान तो मां, ताई चाची, भाभी और मामी आदि ही तैयार करती थीं। सम्मिलित परिवार में बेटी सभी की चेहती होती थी। उसके विवाह की चिन्ता न केवल माता-पिता को अपितु सब रिश्तेदारों को एक सी रहती थी। आज भी कहीं-कहीं सह कुटुम्बों की परम्परा दृष्टिगोचर होती है। निम्न सुहाग में प्रमाणित है :

दूड़ी फुल्लियाँ दूड़ी फुल्लियाँ दादी, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो जित ओबरिया जित सुत्ती दादी राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी धिए तेरे दाजे सुआरां ए।
दूड़ी फुल्लियाँ दूड़ी फुल्लियाँ ताई, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो उत्त ओबरिया जित्त सुत्ती ताई राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी धिए तेरे दाजे सुआरां ए।
दूड़ी फुल्लियाँ दूड़ी फुल्लियाँ माए, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो उत्त ओबरिया जित्त सुत्ती अम्बड़ राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी धिए तेरे दाजे सुआरां ए।
दूड़ी फुल्लियां दूडी फुल्लियाँ चाची, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो उत्त ओबरिया जित्त सुत्ती चाची राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी धिए तेरे दाजे सुआरां ए।
दूड़ी फुल्लियाँ दूडी फुल्लियाँ भावो, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो उत्त ओबरिया जित्त सुत्ती भावो राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी नणदे तेरे दाजे सुआरां ए।

दूड़ी फुल्लियां दूड़ी फुल्लियां मामी, दूड़ी खेलणा जाणा है,
जायो जायो उत्त ओबरिया जित्त सुत्ती मामी राणी है,
न मैं सुत्ती न मैं जागी भाणजिए तेरे दाजे सुआरां ए।

दहेज का वर्तमान विकृत रूप पहले नहीं था। बेटी को ससुराल भेजते समय सगे सम्बन्धी यथा शक्ति सस्नेह, वस्त्राभूषण बर्तन, विस्तर, पलंग, पीढ़ी, गाय, भैंस और बकरी आदि क्रमशः उपहार दिया करते थे, संक्षेप में यही दहेज का स्वरूप था। लड़के वाले आज कल दहेज में चुन-चुन कर बहुमूल्य वस्तुएं मांगते हैं जिनका जुटा पाना लड़की वालों के लिए कठिन नहीं तो रात-दिन की चिन्ता का कारण अवश्य है। बहुत से माता-पिता अपनी सुयोग्य कन्याओं को जीते जी डोली में नहीं बिठा पाते हैं। दहेज की घृणित कुप्रथा के कारण ही आज मध्य वर्ग व निम्न वर्ग की शोचनीय दशा है। लोकगायक ने यही भाव व्यक्त किया है :

सालुए दे लड़ मीनड़ै नी माए रोंदी दे भिजदे,
धी होवे तां धन्न होवे नी लोकी लांदे है मीहणे।
सालुए दे लड़ मीनड़े नी ताई रोंदी दे भिजदे,
धी होवे तां धन्न होवे नी लोकी लांदे है मीहणे।
सालुए दे लड़ मीनड़े नी चाची रोंदी दे भिजदे,
धी होवे तां धन्न होवे नी लोकी लांदे है मीहणे।
सालुए दे लड़ मीनड़े नी भावों रोंदी दे भिजदे,
नणद होवे तां धन्न होवे नी लोकी लांदे है मीहणे।
सालुए दे लड़ मीनड़े नी मामी रोंदी दे भिजदे,
भाणजी होवे तां धन्न होवे नी लोकी लांदे है मीहणे।

हमारे दूरदर्शी लोक गायकों ने जीवन के किसी पहलू को अछूता नहीं छोड़ा है। यदि परिवार में किसी कन्या का विवाह रचाया जाता था तो सभी तन, मन, धन व अन्न देकर पूर्णतया निभाने का प्रयास करते थे अर्थात् 'कारज' करने वाले को गिरने नहीं देते थे वरन् संभाल लेते थे। बिगड़ी को कौशल से बना लेते थे। प्रस्तुत है सुहाग :

नी तू जा, जा बेटिए दादे बेड़े, दादे काज रचाया,
नी तू दे दे दादी चावलड़े खण्ड मंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई दादु दिखी के डरया,
तुसां कंजो कामलड़े होए बाबा, पिछे बॉय खड़ोता।
नी तू जा, जा बेटिए बॉए बेड़े, बॉए काज रचाया,
नी तू दे, दे माई चावलड़े खण्ड मंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई बॉय दिखी के डरया,
तुसां कंजो कामलड़े होए बॉया पिछे ताऊ घड़ोते।

नी तू जा, जा बेटिए ताऊए बेड़े, ताऊए काज रचाया,
नी तू दे, दे ताई चावलड़ें खण्ड मैंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई ताऊ दिखी के डरया,
तुसां कँजो कामलड़े होए ताऊ पिछे चाचे खड़ोते।
नी तू जा, तू जा बेटिए चाचे बेंड़े, चाचे काज रचाया,
नी तू दे, दे चाची चावलड़े खण्ड मैंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई चाचा दिखी के डरया,
तुसां कँजो कामलड़े होए चाचा, पिछे वीरे खड़ोते।
नी तू जा, जा बेटिए भाइयां बेड़े, भाइयां काज रचाया,
नी तू दे, दे भावो चावलड़े खण्ड मैंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई वीरा दिखी के डरया,
तुसां कँजो कामलड़े होए वीरा, पीछे मामे खड़ोते।
नी तू जा, जा बेटिए मामे बेड़े, मामे काज रचाया,
नी तू दे, दे मामी चावलड़े खण्ड मैंदे दियां पुड़ियां,
चावल थोड़े जानि बहुत आई मामा दिखी के डरया,
तुसां कँजो कामलड़े होए मामा, पिछे गोती खड़ोते।

यदि लोक गायक वर्तमान युग में इस सुहाग की रचना करता तो पुड़ियों के स्थान पर 'बोरियों' ही लिखता उसे क्या मालूम था कि मंहगाई आकाश को छूने लगेगी। आखिर इन्सान इस जमाने में किसी की सहायता भी कैसे करे।

बेटी के संजोग खुले और शीघ्र ही विवाह की तिथि निश्चित हो गई। परिजनों को उसके इतनी जल्दी जाने का अनुमान नहीं था। विवाह की कुछ तैयारी नहीं है। सब उसे आगामी तिथि तक रोकतीं हैं। परन्तु कन्या के विचार में प्रथम बार का ही दिन शुभ है। कन्या की निस्पृहता निम्न सुहाग में वर्णित है :

चरखे दियां पूणियां दादी चरखे च रहियां,
छाई दी रही गई छलांज दादी हुण चलिया जाणा।
अन्न धन्न दादी धिए तिजो मैं दिन्नि हां,
तेरा दादु दिंगा जगीर धिए अजे नहीं तैं जाणा।
अन्न धन्न दादी अपणियां नुआं जो देयां,
पुत्तां जो देयां नी जागीर, दादी मैं तां चलिया जाणा।
चरखे दियां पूणियां माए चरखे च रहियां,
छाई दी रही गई छलांज माए हुण चलिया जाणा।
अन्न धन्न धिए तिजो मैं दिन्नी हां,
तेरा बाँआ दिंगा नी जागीर धिए अजे नी तैं जाणा।

अन्न धन्न माए अपणियां नुआं जो देयां,
पुत्तां जो देयां जगीर माए मैं तां चलिया जाणा ।
चरखे दियाँ पूणियाँ ताई चरखे च रहियाँ,
छाई दी रही गई छलांज ताई मैं तां चलिया जाणा ।
अन्न धन्न धिए तिजो मैं दिन्नी हां,
तेरा ताया दिगा नी जगीर धिए अजे नहीं तें जाणा ।
अन्न धन्न ताई अपणियां नुआं जो देयाँ,
पुत्तां जो देयां जगीर ताई मैं तां चलिया जाणा ।
चरखे दियाँ पूणियाँ चाची चरखे च रहियाँ,
छाई दी रही गई छलांज चाची मैं तां चलिया जाणा ।
अन्न धन्न धिए तिजो मैं दिन्नी हां
तेरा चाचा दिगा नी जगीर धिए अजे नहीं तें जाणा ।
अन्न धन्न चाची अपणियां नुआं जो देयां,
पुत्तां जो देयां जागीर चाची मैं तां चलिया जाणा ।
चरखे दियाँ पूणियाँ भाभी चरखे च रहियाँ,
छाई दी रही गई छलांज भाभी मैं तां चलिया जाणा ।
अन्न धन्न नणदे तिजो मैं दिन्नी हां,
तेरा बीर दिगा नी जगीर नणदे हुण नहीं तें जाणा ।
अन्न धन्न भाभी अपणियां नुआं जो देयां,
पुत्तां जो देयां नी जागीर भाभी मैं तां चलिया जाणा ।
चरखे दियाँ पूणियाँ मामी चरखे च रहियां,
छाई दी रही गई छलांज भाभी मैं तां चलिया जाणा ।
अन्न धन्न भाणजिए तिजो मैं दिन्नी हां,
तेरा मामा दिगा नी जगीर धिए हुण नहीं तें जाणा ।
अन्न धन्न मामी अपणियां नुआं जो देयां,
पुत्तां जो देयां नी जगीर मामी मैं तां चलिया जाणा ।

निर्लोभी बेटी सबको एक सा ही जवाब देती है :

आशा गई तृष्णा मिटी और मिटी सब चाह ।
जिनको को कछु न चाहिए वे शाहों के शाह ।

वास्तव में वे बेटियां धन्य हैं, जिन्हें माता-पिता तथा अन्य रिश्तेदारों से कुछ लेने की इच्छा नहीं है । जब वे पराया धन हैं तो उस घर की धन सम्पति से उन्हें क्या मतलब ? अन्न धन प्राप्ति का अधिकार उनकी बहुओं का तथा जागीर उनके बेटों की है । वे जिस घर की साम्राज्ञी बनने जा रही हैं, वहीं उनके अधिकार व कर्त्तव्य सुरक्षित हैं । अब वे मां के घर में अधिक दिन रहना नहीं चाहती । चरखे में उनके हाथ से काती जाने वाली पूनियां लगी की लगी रह जाएंगी और

चाटी में लस्सी लगी रहेगी, भाव यह है कि विवाह के काम काज में संलग्न रहने के कारण उक्त दोनों ही कार्यों के लिए किसी के पास समय ही नहीं होगा। वर्तमान में लड़कियों का भी माता-पिता की संपत्ति में यद्यपि समानाधिकार है, तथापि उन्हें ससुराल में धन के लालची तंग करते हैं, यह किसी से छिपा नहीं है। हमारे लोक-गायकों की दृष्टि बहुत पैनी थी। इस सुहाग में उन्होने 'सन्तोष' को बहुमूल्य संपत्ति बताया है। यह संतुष्टि का भाव आज भी त्रस्त समाज से हा हाकार को खदेड़ने का दम रखता है। विवाह का शुभ दिन निकटतम आ गया है। बारात के स्वागत की तैयारी जोर शोर से हो रही है। जब ढोल नगारों की गूंज बेटी के कान में पड़ी तो वह मैले कुचैले बेश से घर के पिछवाड़े बारात देखने के लिए खड़ी हो गई। बारात गाती नाचती हुई आगे बढ़ रही थी, इतने में सगे सम्बन्धियों की दृष्टि उस पर पड़ती है, तभी लोक-गायक का स्वर मुखरित हो उठता है :

बेटिए तू दादे दी मैली लाडो कें खड़ी ?
दादू मैं देखदी वर अपणे नूं, चल छनरिया आवे रथ चढ़ी।
दादू इन्हां साजना दे मली दली धोयों पैर, जलेबी धरयों रस भरी।
बेटिए तू बाँए दी मैली लाडो कें खड़ी ?
बाँ मैं देखदी वर अपणे नूं, चल छनरिया आवे रथ चढ़ी।
बाँ इन्हाँ साजना दे मली दली धोयो पैर, जलेबी धरयो रस भरी।
बेटिए तू ताए दी मैली लाडो कें खड़ी ?
ताया मैं देखदी वर अपणे नूं, चल छनरिया आवे रथ चढ़ी।
ताया इन्हाँ साजना दे मली दली धोयो पैर, जलेबी धरयो रस भरी।
बेटिए तू चाचे दी मैली लाडो कें खड़ी ?
चाचा मैं देखदी वर अपणे नूं, चल छनरिया आवे रथ चढ़ी।
चाचा इन्हाँ साजना दे मली दली धोयों पैर, जलेबी धरयों रस भरी।
भणे तू बीरे दी मैली लाडो कें खड़ी ?
वीरा मैं देखदी वर अपणे नूं, चल छनिरया आवे रथ चढ़ी।
वीरा इन्हाँ साजना दे मली दली धोयो पैर, जलेबी धरयो रस भरी।
भाणजिए तू मामे दी मैली लाडो कें खड़ी ?
मामा मैं देखदो वर अपणें नूं चल छनरिया आवे रथ चढ़ी।
मामा इन्हाँ साजना दे मली वली धोयो पैर, धरयो जलेबी रस भरी।

बेटी को देखकर सभी ने क्रमशः एक ही बात पूछी कि वह मैली कुचैली बनी, वहां क्यों खड़ी है ? इस परिवेश में केवल उसके रिश्तेदार ही उसे पहिचान रहे थे। यदि वह तैयार होकर आती तो बाराती भी उसे देखने लग जाते हैं दूसरा भाव है अल्हड़ बचपन का, जैसे औरों की बारात को देखने लड़कियां भाग आती हैं, वैसे ही अपनी बारात देखने भी चली आई। तीसरा अर्थ है कि कंवारे वर को भी देख लेना चाहिए। उसके साथ धोखा तो नहीं है। कहीं वर विकलांग या कुरूप तो नहीं है। बेटी अति समझदारी से सबको उत्तर देती है कि वह अपने वर को जो रथ पर चढ़कर

आया है देख रही है। दूसरी अति महत्वपूर्ण बात है ये जो 'साजन' अर्थात् बाराती आ रहे हैं, वे थक चुके होंगे। जनवासे में पहुंच जाने पर इन सबके पांव मल-मल कर धोना ताकि इनकी थकान दूर हो जावे। पण्डितगण, ससुर जी, नाना, दादा आदि बुजुर्ग व अन्य बारातियों का आदर-सत्कार करने में कोई कमी न रखना। इन्हें सुन्दर आसनों पर बैठा कर रसभरी जलेबी व अन्य स्वादिष्ट मिठाइयां खिलाना। सुअवसर बार-बार नहीं आता, इसे चूकना नहीं। अन्यथा जीवन पर्यन्त मुझे उलाहना मिलता रहेगा।

पति के लिए उसने मुंह से कुछ नहीं कहा क्योंकि वह जानती है कि दामाद व बेटी तो इस परिवार में कई बार आएंगे, सबसे मिलेंगे। परन्तु बाराती तो आज के पश्चात् फिर नहीं आएंगे। इनके आदर सत्कार का यही सुअवसर है। यह अतिशयोक्ति सी प्रतीत हो रही है कि बुजुर्ग सम्बन्धियों को क्या ज्ञात नहीं होता था कि बारात का सत्कार किस प्रकार करना है? इसके समर्थन में यह कहा जा सकता है कि बारात के आने पर भगदड़ सी मच जाती है, शोर शराबा अधिक होता है। करने योग्य कई कार्य हलचल में भूल जाते हैं। बारात इसी कारण से पहले जनवासे में ठहराई जाती है। साधारणतया भी देखा गया है कि किसी भी कार्यारंभ में सबसे अधिक सावधान घर की बेटियां होती हैं। 'यह करना न भूल जाएं, वह न घट जाए' ताकि बाद में कोई पश्चाताप न हो, वे सबको याद करवाती रहती हैं। स्वभावानुसार बेटी इस समय भी सबको कर्त्तव्य का स्मरण करवा रही है। सर्वाधिक विज्ञ हैं हमारे लोक कवि व लोकगायक जिन्होंने समयानुसार लोक गीतों का सृजन व गायन कर उन्हें समृद्ध किया तथा संस्कार-गीतों की उपादेयता सिद्ध करके जन-जीवन को सरल बनाया।

आर्य कन्या पाठशाला
लोअर बाजार शिमला

हिमालय का चितेरा—रोरिक

—देवदत्त कालिया

प्रभुता सम्पन्न भारतीय लोकतन्त्रात्मक गणराज्य के पूर्ण राज्य के रूप में हिमाचल प्रदेश का राजनीतिक अस्तित्व चाहे एक दशक से कुछ अधिक ही हो, परन्तु कला और संस्कृति के क्षेत्र में इस पहाड़ी प्रदेश की देश के इतिहास में एक अग्रगण्य तथा चिरंतन भूमिका रही है। ऊंचाई पर बसने वाले यहां के लोगों ने देश की प्राचीन परम्पराओं को बनाए रखा तथा कई युगों तक यहां के शिखरों ने प्रकाश स्तम्भ के रूप में योगदान दिया। हिमालय के शान्त तथा प्राकृतिक वातावरण में योग साधन और दर्शन-शास्त्र पनपे। इनके अतिरिक्त उत्कृष्ट कला कौशल का भी समय-समय पर इसी क्षेत्र में प्रादुर्भाव हुआ।

भारत के अन्य प्रदेशों में वहां के तथा अन्य प्रदेशों के कलाकारों की कृतियां की अभिव्यक्ति हुई परन्तु एक विदेशी वैभवशाली कलाकार द्वारा अपनी जन्मभूमि तथा अन्य देशों का भ्रमण करने के पश्चात् हिमाचल प्रदेश की देवभूमि में ही अपनी कला की उच्चतम साधना का स्रोत उपलब्ध करना, केवल यहां की अनन्य विशिष्टता है। वह बहुमुखी प्रतिभा वाला कलाकार विदेशों में सफलता प्राप्त करने से बाद हिमाचल प्रदेश की मनोरम छटा से ऐसा प्रभावित हुआ कि यहां का ही होकर रह गया। प्रदेश की अनुपम सांस्कृतिक देन का अनुभव मैंने हिमाचल में अपने दीर्घकालीन प्रवास में किया।

ऐसे यशस्वी थे प्रो० निकोलोस रोरिक, जो सन् १९२८ में कुल्लू घाटी के 'नग्गर' स्थान में आकर बस गए और वहां लगभग बीस वर्ष तक अपनी परिपक्व कला, जीवन-दर्शन तथा अन्य उत्कृष्ट कार्यों को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया। उनका जन्म रूस के सेंट पीटर्सबर्ग में तारीख ९ अक्तूबर १८७४ को हुआ। प्रारम्भिक शिक्षा सेंट पीटर्सबर्ग विश्व-विद्यालय में हुई। बाद में विदेशों में उन्होंने कला का अध्ययन जारी रखा। विदेशों में शिक्षा के क्षेत्र में वैभवशाली सफलता प्राप्त कर सन् १९४२ में वे भारत आए। यहां आकर उन्होंने मध्य एसिया के पर्वतीय क्षेत्रों में एक पंच-वर्षीय कलात्मक एवं वैज्ञानिक अभियान का नेतृत्व किया। वहां से लौटकर 'नग्गर' में ही उन्होंने अपनी बहुमुखी प्रतिभा को प्रस्तुत किया।

प्रो० रोरिक को अल्प आयु में ही मान्यता और प्रसिद्धि प्राप्त हो गई थी। उनकी रचनात्मक गतिविधियां विविध और प्रचुर थीं। वे एक श्रेष्ठ कलाकार, वैज्ञानिक, शिक्षक, दार्शनिक लेखक, अभिकल्पक, कवि, मानववादी तथा अन्वेषक थे। चित्रों के माध्यम से उन्होंने जीवन-दर्शन सम्बन्धी सिद्धान्त व्यक्त किए। जिनका अनुमान केवल उन द्वारा निर्मित चित्रों के गहन अध्ययन

से ही परखा जा सकता है। इसी प्रकार की एक प्रर्दशनी से प्रभावित होकर पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने उस महान् आचार्य के प्रति भारत की कृतज्ञता का मार्मिक उदगार व्यक्त किया। उन सार गर्भित चित्रों में भारत की प्राचीन सांस्कृतिक तथा ऐतिहासिक परम्पराओं की झलक मिलती है। स्थाई तत्वों का उस गुरू ने चित्रों में दर्शाया। उनकी स्मरणीय देन के कुछ नमूने 'नग्गर' स्थित उनकी कलादीर्घा में मैंने कुछ अवसरों पर देखे थे। ३२ चित्रों में हिमालय के विभिन्न रूप, लाहौल स्पीति, रोहतांग पर्वत माला तथा तिब्बत के जन-जीवन से सम्बन्धित है। उनका सिद्धांत था हम सभी सौंदर्य-पाश में बंधे हैं, सुन्दरता हमारी आराधना का सोपान है, सौंदर्य से ही हमारी विजय है। डॉ० राधाकृष्नन और गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर रोरिक के घनिष्ठ मित्रों में थे। उन्होंने रंगीन चित्र भी बनाए, लेख, कविताएं भी लिखीं।

वे विश्व शांति के सांस्कृतिक दूत तथा पूर्व और पश्चिम के बीच कला के सेतु थे, जो एक महान् रूसी महानतर भारतीय और सम्भवतः महानतम विश्व नागरिक थे पहाड़ी जनता ने उस महानतावादी को 'गुरू' की उपाधि दी। नग्गर स्थित 'गुरू' की समाधी वहां के लोगों के लिए एक पवित्र स्थल है।

हिमाचल प्रदेश की विश्व संस्कृति की देन इस महान् कलाकार को प्रेरणा स्थल प्रदान करने में निहित है।

२० सी/सी ४ ऐ जनकपुरी
दिल्ली–११००५८

कांगड़ा के जन्म संस्कार गीत

—राजरानी शर्मा

मनुष्य जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त संस्कारों द्वारा बन्धा हुआ है। जन्म संस्कार, मुंडन संस्कार, यज्ञोपवीत संस्कार यानि उपनयन संस्कार। ये संस्कार भारतवर्ष में प्रत्येक प्रदेश, जाति व भाषाओं में सम्पन्न होते हैं। हर प्रदेश में अलग-अलग भाषाएं बोली जाती हैं। हर भाषा व हर प्रदेश में कहीं न कहीं कोई न कोई लोक-कवि अवश्य रहता है जो हर संस्कार के अवसर पर घटित होने वाली घटनाओं को पंक्तिबद्ध करके अपनी भावनाओं को गीतों के रूप में हमारे समक्ष प्रस्तुत करता है।

हिमाचल प्रदेश में कांगड़ा की धौलाधार पहाड़ियों की गोद में हरी-भरी सुरम्य घाटियां, दूर-दूर तक फैले हुए हरे-भरे लहलहाते खेत, फलों से लदे हुए पेड़ व अपनी कलकल ध्वनि से दिशाओं को गुंजायमान करती हुई पहाड़ी नदियां लोक कवि के हृदय को उद्वेलित करती हैं। तब कवि के हृदय की भावनाएं गीत बन कर उसके मुंह से निकलती हैं। इन गीतों को जब कुमारी व नवविवाहित रमणियां अपने सुमधुर कंठो द्वारा सुन्दरलय से गाती हैं तो सुनने वाले आनन्द विभोर होकर स्वयं को भूल जाते हैं। एक सुन्दर समां बन्ध जाता है। मनुष्य वर्तमान के सुख-दुःख को भूल कर कल्पना के स्वप्निल संसार में खो जाता है।

एक नवविवाहित युवती का पति काम काज के सिलसिले में प्रदेश गया हुआ है। वह गर्भवती होने पर लज्जा के मारे किसी को कुछ नहीं बता पाती परन्तु सास की अनुभवी आंखें ताड़ जाती हैं कि कहीं दाल में काला अवश्य है। सास जान जाती है कि बहु के पांव भारी हैं। फिर भी संदेह मिटाने के लिए बहू से पूछती हैं "क्यों बहू तुम्हारी तबीयत कुछ खराब है क्या?" बहू शर्म के मारे गड़ सी जाती है फिर भी हिम्मत बटोर कर कहती हैं। नहीं मां जी कुछ दिन पहले खेतों से जानवरों के लिए घास लेकर आ रही थी तो पांवों में कांटा चुभ गया था। उसी कांटे के कारण दर्द से बुरा हाल हो रहा है। सच्ची बात छुपाने के लिए ही झूठ का सहारा लेना पड़ता है। पैरों की बात है न तो सास-ससुर देख सकते हैं और न ही बहू अपने पांव दिखाने की असभ्यता कर सकती है।

हंडदिया फिरदिया गिड़दिया मुड़दिया
कंडला चुभी गेया पैरे वे हां
जाई आख्यो गोरी दे सौरे मुहीमिए
अज तेरी नूअड़ डरदी वे हां

डरदी कंडे दीया पीड़ा वे हां
जाई ग्राख्यो गोरी दे जेठे मुहीमिए
ग्रज तेरी भाभो डरदी वे हां
डरदी कंडे दीया पीड़ा वे हां
जाई ग्राख्यो गोरी दे कंदे मुहीमिए
ग्रज तेरी नाजो डरदी वे हां
डरदी कंडे दीया पीड़ा वे हां
दसुऐं महीने गोरिया रघुपति जाया
दसदी रही पैरे कंडला वे हां
दसदी रही कंडे पीड़ा वे हां
दादुए दे ग्रंगणे बजी है बधाई
धरती दुबा लेई ग्राई वे हां
नानुए दे ग्रंगणे बजी है बधाई
धरती दुबा लेई ग्राई वे हां

सास बेचारी बहुत डरती है कि कांटे की दर्द बहुत है कहीं पीक न पड़ गई हो। वह ससुर व ग्रपने बड़े बटे को कहती है कि बहू को बड़ी दर्द है। किसी ग्रच्छे से वैद्य को बुला कर दिखा दो। परन्तु उन्हें खेती बाड़ी व जानवरों के काम से ही फुरसत नहीं मिलती। सास पति व पुत्र की लापरवाही से दुःखी होती है। फिर परदेश गये हुए पुत्र को पत्र लिखवाती है कि तुम्हारी पत्नी कांटे की दर्द से बिमार है उसे कहीं ले जाकर उसका इलाज करवा दो।

पुत्र जिसे कि सच्चाई का ज्ञान है वह चुप्पी धारण कर लेता है। यहां तक कि नौ महीने बीत जाते हैं दसवां ग्रारम्भ हो जाता है। दसवें महीने जब गोरी पुत्र को जन्म देती है तो सभी हैरान रह जाते हैं। यों तो गर्भवती स्त्री के शारीरिक परिवर्तन से पता चल जाता है। मगर कांगड़ा में लंहगा ग्रोढ़नी से स्त्रियां ग्रपने सम्पूर्ण शरीर को इस प्रकार ढक लेती हैं कि किसी को भी पता नहीं चल पाता। दाई जच्चा के कमरे में थाली बजा कर सभी को पुत्र जन्म की सूचना देती है व बधाई के रूप में ससुर से इनाम भी पाती है।

कांगड़ा में ऐसा रिवाज है कि पुत्र जन्म के ग्रवसर पर मायके वाले बेटी के ससुराल में हरी दूब व कुछ मीठा लड्डू हो चाहे गुड़ हो बधाई के रूप में ससुर को भेजते हैं। यदि नजदीक ही रहते हों तो ये सामान नाई के हाथों भेज देते हैं। मगर यदि दूर हो व भेजने में ग्रसमर्थ हों तो बेटी धरती मां से ही प्रार्थना करती है कि हे मां तुम सर्वत्र विद्यमान हो तुम्हीं ग्रपने ग्रांचल से हरी दूब दे दो नहीं तो मुझे सास के ताने सुनने पड़ेंगे। धरती मां बेटी की पुकार सुन लेती है ग्रौर दादा व नाना के ग्रांगन में हरी दूब लगा कर दोनों को ग्रपनी मूक बधाई प्रदान करती है।

चैत्र का महीना है। ग्रामों की डालियां बौरों से भरी पड़ी हैं। उस पर बैठी कोयल मधुर कंठ से गाना गा रही है। ग्राम के पेड़ के नीचे चारपाई पर एक नवयौवना ग्रपने नवजात पुत्र को

सुला रही है और मन ही मन सोचती है कि कोयल का गाना सुनकर बच्चा कहीं जाग न जाए इसलिए कोयल से कहती है हे कोयल तू मेरे बाग से उड़ कर चली जा। मेरे बाबुल के देश में बैठना। वहां आमों का बहुत बड़ा बगीचा है उसी में बैठ कर मेरे पिता जी को यह सन्देश देना कि मेरा नन्हा सा लाल पलंघूड़े में झूल रहा है।

उडेयां नी मेरिये बांगां दीये कोयले
जाई बौयां बावे देस नी
मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
चार कहार मेरे बावे ने भेजे
पंजुआं भेजेया बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
कुतू उतारां जिनां चौई कहारां
कुतू उतारां अपने बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
बागां उतारां जिनां चौई कहारां
महले उतारां अपने बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
क्या तां खुआणा जिनां चौई कहारां
क्या खुआणा अपने बीर न मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
गिरियां छुहारे जिनां चौई कहारां
अल्ली अल्ली दाख अपणे बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
क्या तां देणा जिनां चौई कहारां
क्या तां देणा अपने बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे
रोक रुपइया जिनां चौई कहारां
सूई सूई पग अपने बीर नी मेरा याणा लाल पंघूड़े झूटे

युवती की प्रार्थना सुनकर कोयल सचमुच ही उड़ कर उसके मायके चली जाती है। उसका संदेश उसके पिता को पहुंचा देती है। युवती के पिता अपने दोहते का आगमन सुनकर बहुत प्रसन्न होते हैं व उसके भाई को डोली लेकर चारों कहारों के साथ भेज देते हैं। भैया चारों कहारों सहित आ पहुंचे हैं। मन में सोचती है इन लोगो को कहां ठहराऊं? चारों कहारों को आम के बगीचे में ठहराती है और भाई को आदर पूर्वक अपने महल में ले जाती है। चारों को नारियल, छुहारे आदि सूखे मेवे खिलाकर उनकी खातिर करती है और अपने भैया को चुन-चुन कर नर्म नर्म दाने किशमिश के प्रेम पूर्वक खिलाती जाती है व अपने माता-पिता, छोटे भाई बहनों, भाभियों व अन्य परिवार जनों की व सखियों की कुशलता पूछती जाती है।

मन ही मन पुनः सोचती है कि चलती बार इन लोगों को कुछ न कुछ भेंट भी देनी चाहिए। मायके जाकर सब लोग पूछेंगे कि बहिन ने तुम्हारी कैसी खातिरदारी की। तुम्हें क्या खिलाया, पिलाया व आती बार क्या भेंट में दिया आदि? उन चारों कहारों को तो एक रुपया यानि चांदी का एक-एक रुपया दिया और अपने भाई को लाल रंग की पगड़ी पहनाई। ताकि उसके गांव

वाले दूर से ही उसे देखकर पहचान लें। इस सारे गीत में कवि ने बहिन का प्रेम पिता द्वारा डोली सहित कहारों को भाई के साथ भेजकर बेटी का सम्मान करवाया। भाई के आने की प्रसन्नता व उत्सुकता का बहुत सुन्दर ढंग से चित्रण किया है। बहन द्वारा भाई का स्वागत बड़े मर्मस्पर्शी ढंग से किया है। गीत को सुन कर रोमांच हो जाता है।

एक अन्य गीत है। इसमें ननद और भाभी में हुई बातचीत को दर्शाया गया है। भाभी ननद को कहती है कि तुम्हारे भतीजा हुआ तो मैं अपने गले की दुलड़ी यानि दो लड़ियों वाला हार तुम्हें दे दूंगी। परन्तु जब देने का अवसर आता है तो भाभी का मन बदल जाता है। फिर जो होता है उसे कवि इस प्रकार प्रकट करता है :

नणद ताँ भाभो पानिए चलियाँ
कुछ करदियाँ कौल करार श्रो जीया राम
जे भाभो तेरे बालक जन्मे
मिजो क्या तू दिंदी बधाई श्रो जीया राम
गल्लाँ ताँ बाताँ च दिन गए बीती
श्राई सैंह रात सुहाणी श्रो जीया राम
घरे ताँ जाई भाभो बालक जन्मेया
ननदाँ जो खबर ना कीती श्रो जीया राम
लोकाँ ते सुणी के नणद जे श्राई
देई दे श्रो भाभो मेरी दुलड़ी श्रो जीया राम
एह दुलड़ी मेरा बालक पहने
तू ताँ लगे मेरी सुसरी श्रो जीया राम
रुस्सी के ननद घरे जो श्राई
बालके ने मिली के न श्राई श्रो जीया राम
घर ताँ जांदिया जो सस दे पुछे
क्या नूंए तू लेश्रन्दी है बधाई
बीर तां मेरा घरे नी है ससू
मेरी भाभो धीवड़ जाई श्रो जीया राम
चल नी नूंए झूठ ना बोलेयाँ
भाभो मुंहे ना लाई श्रो जीया राम
बारहाँ ताँ बरियाँ बीर घर श्राया
रुसड़ी भैंण मनाई श्रो जीया राम
थाल ताँ भरी बीरा मुच्चेयाँ दा ल्याया
उपर रखी गले केरी दुलड़ी श्रो जीया राम
लेई तां भैंण सौहरयां चली
मुड़ी मुड़ी दिंदी है बधाई श्रो जीया राम
बीर ताँ मेरा लख बरी जीए
भाभी दा रहे श्रटल सुहाग श्रो जीया राम

जुग जुग जीए भाभो बालक तेरा
मेरे बाबे दा अंगण सुहोंग्रां ग्रो जीया राम

जहां ननद व भाभी की खटपटी को सभी जानते हैं वहां इनका प्रेम भी जगविदित है। यों तो बहुत सी भाभियां ऐसी भी मिलेंगी जो ननद व बेटियों में अन्तर नहीं रखती। मगर जहां लेन देन का मामला ग्राता है वहां प्रायः ही मनमुटाव हो जाता है। भाभी पराई बेटी है। मां बाप का घर छोड़कर ससुराल की प्रत्येक वस्तु पर ग्रपना ग्रधिकार समझती है। बस भाभी की यही बात ननदों को खटकती है। भाभी घर पर ग्रपना ही ग्रधिकार जमाना चाहती है मगर भाई की नजरों में बहन भी बराबर का हक रखती है। इसलिए ननद को ग्रपनी ससुराल में जाकर झूठ बोलकर भी भाई का सम्मान रखना पड़ता है।

जैसे कि उपरोक्त गीत में ग्राता है कि बातों-बातों में ननद भाभी से पूछती है कि यदि तुम्हारे बेटा हुग्रा तो बधाई के रूप में मुझे क्या दोगी ? इस पर भाभी कहती है कि यदि तुम्हारे कथनानुसार मेरे पुत्र हुग्रा तो यही ग्रपने गले का दोलड़िया हार तुम्हें दे दूंगी। परन्तु जब देने का समय ग्राता है तो भाभी सोचती है कि यह हार मेरा ग्रपना बाल बड़ा होकर पहनेगा। इसे ननद को क्यों दूं ? इसी कारण वह ननद को पुत्र होने की खबर नहीं भेजती। मगर जब लोगों से ननद को पता चलता है तो ननद भाभी के पास जाकर ग्रपने को दिए गए वचन की याद दिलाती है। भाभी देने में ग्राना-कानी करती है तो ननद रूठ कर ग्रपने ससुराल लौट जाती है।

घर पहुंचने पर सास पूछती है कि भाभी ने खुशी के ग्रवसर पर क्या दिया। तो उसे मायके का मान रखने के लिए झूठ बोलना पड़ता है कि बधाई क्या देती थी ? मेरा भाई तो परदेश गया हुग्रा है ग्रौर भाभी के लड़की हुई है। सास ने भी दुनियां देखी थी सो वह समझ जाती है ग्रौर कहती है कि तू साफ क्यों नहीं बोलती कि भाभी ने तुम्हारे साथ सीधे मुंह से बात भी नहीं की। बेचारी बहू क्या बोले ग्रांसू का घूंट पीकर रह जाती है। भाई पर भी क्रोध ग्राता है पर ऐसी परिस्थिति में कर भी क्या सकती है ?

बारह वर्ष के उपरान्त भाई ग्रपने घर लौटता है। सबकी कुशलता पूछता है तो उसे पता चलता है कि बहन नाराज है। पत्नी को डांट कर बहन के घर जाता है ग्रौर उसे किसी प्रकार मना कर ग्रपने घर ले ग्राता है। उसकी खूब खातिर करके बहन का गुस्सा दूर करता है। बहन तो भाई को हृदय से प्रेम करती है तभी भाई के मनाने पर मान जाती है। बहन जब वापिस लौटने लगती है तो भाई उसे सुच्चे मोतियों से भर कर थाल देता है ग्रौर उस थाल के ऊपर भाभी के गले की 'दुलड़ी' रख देता है इतना कुछ लेकर जब बहन वापिस लौटती है तो उस के ग्रन्तःस्थल से ग्राशीष निकलती है कि मेरा भाई लाखों वर्षों तक जीये ग्रौर भगवान मेरी भाभी का सुहाग ग्रटल बनाए रखे। मेरा नन्हा सा भतीजा भी युग-युग जीये। इन्हीं के साथ मेरे पिता का घर सुहावना लगता है।

यह गीत एक सच्ची घटना पर बना है इसका वर्णन कवि ने कुछ इस प्रकार से किया है कि सुनने वाले की आंखों के सामने चलचित्र की भांति हर दृश्य घूमने लगता है। कांगड़ा के इन लोक गीतों का भारतीय इतिहास के साथ भी गहरा सम्बन्ध है।

इन गीतों में जहां मथुरा में जन्में भगवान कृष्ण की बाल लीलाओं का वर्णन आता है वहां पवित्र सरयू नदी के तट पर स्थित अयोध्या नगरी के राजपुत्र रामचन्द्र जी के जन्मोत्सव का भी वर्णन आता है। कृष्ण जन्म के समय नन्द बाबा का प्रसन्न होकर धनधान्य व वस्त्रादि का दान करना, यशोदा मैय्या की प्रसन्नता, गोकुल की नारियों का सज धज कर आना और मंगलाचरण करना सभी घटनाएं इस गीत में हैं।

बाबे नन्दे दे जन्मेया पूत
जोया गोरी पलंगे चढ़ी।
नन्द करदा है गऊआं दे दान
दुधां दे मट भरी।
नन्दा करदा है कपड़ेयां दे दान
सुच्चेयां जड़त जड़ी।
नन्द करदा है मोतियां दे दान
थालां दे थाल भरी।
ओह तां आइयां बृज दीयां नार
सोलह शिंगार करी।
ओह तां गावण लगियां गीत
मंगलाचार करी।
ओह तां देवन लगियां सीस
जीए बाला लख वरी।

अर्थात् नन्द बाबा के जब से पुत्र का जन्म हुआ है तब से दोनों पति-पत्नी की प्रसन्नता का पारावार नहीं है। यशोदा ने बेटे को जन्म दिया है वह भी इस अधेड़ आयु में इस कारण यशोदा जी बड़ी शान से पलंग पर बैठी है पांव भी नीचे नहीं उतारती। पिता गोप सम्राट नन्द बाबा की प्रसन्नता का कोई भी ठिकाना नहीं है। हो भी क्यों नहीं, न जाने बेटे का मुंह देखने को कब से तड़फ रहे हैं। मारे खुशी के गऊओं के दान कर रहे हैं। प्रेम विभोर होकर नई ब्याई हुई गऊओं का दूध दूह कर मटकियां भर-भर कर लोगों को देते जा रहे हैं। गरीब किसानों व ग्वालों को नाना प्रकार के सूती व रेशमी वस्त्रों पर गोटा किनारी व सितारे जड़ कर उन्हें बांट रहे हैं। कृष्ण जन्म का समाचार वायु की तरह सारे वृन्दावन में फैल गया है। वृन्दावन की सुन्दर सजीली नारियां सोलह शृंगार कर के नन्द जी को बधाई देने के लिए महलों में आ रही हैं। महलों में आकर नाना प्रकार से मंगलाचार कर रही हैं। भगवान से यह प्रार्थना कर रही हैं कि हे भगवान नन्द जी का यह बालक युग युग तक जीता रहे। दुष्ट ग्रहों से व ईर्ष्यालु लोगों की बुरी नजर से भगवान उसकी रक्षा करें। संसार के दुख व कष्ट इसकी ओर कभी नजर भी न करें। इस प्रकार भगवान कृष्ण को हृदय से शुभाशीष दे रही हैं।

भगवान श्री राम चन्द्र जी के बारे में यह गीत भी प्रसिद्ध है :

लंका दे तंबुए टुटे राम चन्द्र आए ते
अज तां बधाई बजी दशरथ राए दे ।
बिगसी सैंह मात कुसल्या पुत्र जणाई के
बिगसे सैंह राजा दसरथ दम्मां लुटाई के
बिगसी सैंह दाई रानी थाल बजाई के
बिगसी सैंह बुआ रानी शक्कर बंडाई के ।
बिगसी सैंह दादी रानी लागां दुआई के
बिगसेया सैंह दादु राजा नगारे चोट पुआई के ।
बिगसी सैंह चाची रानी नच्ची कने गाई के
बिगसेया सैं चाचा राजा खुशियां मनाई के ।
बिगसे सैंह धरती अम्बर फुल्ल बरसाई के
बिगसे सैंह ब्रह्मा बिष्णु देवतेयां मनाई के ।

जब से रामचन्द्र जी का जन्म हुआ है तभी से लंका में अनेक प्रकार के अपशकुन हो रहे हैं । मन्दोदरी के लाख समझाने पर भी रावण अपनी दुष्टता नहीं छोड़ता । इधर अयोध्या में राजा दशरथ के घर में रामचन्द्र जी का जन्म हुआ है । पुत्र को जन्म देकर माता कौशल्या खुशी मना रही हैं । पिता दशरथ दोनों हाथों से पैसा लुटा रहे हैं । दाई ने थाली बजा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट की है । बुआ रानी सब का मुंह मीठा करवा रही हैं । दादा जी ने सारे शहर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि प्रत्येक वासी इस प्रसन्नता में शामिल हों और दादी रानी भी सभी लोगों को उनके लाग दे रही हैं । चाचा चाची भी नाच गा कर अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रहे हैं । आकाश ऊपर से पुष्प बरसा रहा है और धरती ने अपने सभी बेल-बूटे फूलों से सजा दिए हैं । ब्रह्मा, विष्णु व अन्य सभी देवता बालक को आशीर्वाद दे रहे हैं ।

१०१, लोअर बाजार,
शिमला ।

कांगड़ी लोकगीत 'पखड़ू' : संक्षिप्त परिचय

—शेष अवस्थी

पखड़ू एक प्रकार के विरह-गीत हैं, जिन का कांगड़ी लोक-गीतों में विशेष स्थान है। इन गीतों में विरह जन्य स्थितियां कई कारणों से उपस्थित होती हुई दृष्टिगोचर होती हैं। विरह की स्थिति में ही नहीं अपितु प्रतिकूल परिस्थितियों में भी ये गीत गाए जाते हैं। इन गीतों में नायिकाओं को श्वसुर पक्ष से मिलने वाले दुःख अर्थात् सास, ननद, जेठानियों आदि की प्रताड़णा, उपालम्भ एवं यातनाओं का तथा मायके से मिलने वाले प्यार एवं सुख का वर्णन होता है। बरसात के दिनों में धानों की पनीरी रोपती अथवा निलाई करती हुई कृषक स्त्रियों से, जो सामूहिक रूप में कार्यरत होती हैं, बड़े कारुणिक स्वर में इन गीतों को सुना जा सकता है। इसके अतिरिक्त अन्य अवसरों पर भी एकत्र हुई महिलाएं इन 'पखड़ू' गीतों को करुणा भरे स्वरों में गाती हैं। इस प्रकार 'पखड़ू' लोक-गीत की तुलना हरियाणा में बरसात के दिनों में गाए जाने वाले 'मल्हार' तथा मिथिला के 'मलार' लोक-गीतों से की जा सकती है।

'पखड़ू' लोक-गीतों में भले ही छन्द शास्त्र के नियमों का पालन न होकर इनकी पंक्तियां छोटी-बड़ी हों परन्तु वे लयबद्ध होती हैं। इसका कारण स्पष्ट है कि इन गीतों अथवा किसी भी लोक-गीत का रचयिता काव्य गुणों को ध्यान में रख कर इन गीतों की रचना नहीं करता बल्कि ये गीत तो वे हृदयोदगार होते हैं जो वियोग की स्थिति में या अन्यमनस्कता की अवस्था में सहज स्वाभाविक रूप में कण्ठ से निःसृत स्वर होते हैं। परन्तु फिर भी ये अलंकार एवं तुक आदि पर तो आधारित होते ही हैं और रस की दृष्टि से तो ये गीत बड़े ही कोमल एवं हृदय-स्पर्शी होते हैं।

एक नायिका के यहां उसका भाई आता है, वह उसके लिए घी लगाकर रोटी पका कर खिलाना चाहती है परन्तु साथ ही वह सास के आ जाने से भी डर रही है। भाई के पूछने पर वह बताती है कि उसकी सास ऐसी है जैसे आम का बबूला और ननद तो आकाश की बिजली जैसी है। वह भाई को छोड़ने घर से कुछ दूर जाती है तो भाई उसे घर लौट कर बच्चे को खेलाने के लिए कहता है। परन्तु वह जो उत्तर देती है वह बहुत ही मर्म स्पर्शी है। वह कहती है कि मेरा बालक तो सदा रोता रहेगा और मैं उसे खेलाती रहूंगी परन्तु मेरी मां का जाया मुझे कब मिलेगा ? निम्नलिखित 'पखड़ू' में इस घटना का मार्मिक चित्र है। इसमें उपमा का भी बड़ा सुन्दर प्रयोग हुआ है :—

भरि बो चंगेर मैं सुकणा पान्दी,
चुगि जान्दा काला काग ए।

उड़यां कागा, बड़िया बिहागा,
कुस वो परोह्णे ग्रोणा ए।
सुन्ने दी सोठी मेरें गोह्रें ठणाकी,
भाई परोह्णा ग्राया ए।
हत्थें ता लिग्रा भाइयें सुन्ने दा पिंजरा,
विच वो बैठा काबल तोता ए।
उठ नी बैंह्णे तू गलें लग मेरें,
तू मेरिया ग्रम्मां दी जाई ए।
टुटि जान्दा पिंजरा भजि जान्दा पिंजरा,
उड़ि जान्दा काबल तोता ए।
पक-पक फुलकिग्रा, घल-घल घीउग्रा,
सस्सू कठयालिया ग्रोणा ए।
पक-पक फुलकिग्रा, घल-घल घीउ ग्रा,
नणान कठयालिया ग्रौणा ए।
देही-कदेही बैंह्णे, ससड़ी तेरी,
देही कदेही नणान ए।
ग्रगनि दा पूला भाइया सस जे मेरी,
ग्रम्बरे दी बिजली नणान ए।
सस जे ग्रौह्ंगी बैंह्णे मेरा क्या करह्गी,
बहियां छमाहियां दा परोह्णा ए।
पिपले हेठ, मरूए दिया छाउग्रां,
सुख नन्द लैणा गलाई ए।
हटि जायां बैंह्णे, मुड़ि जायां बैंह्णे,
बालके जाई खलायां ए।
बालके ता भाइया नित-नित खेलणा'
ग्रम्मां दा जाया कदि मिलणा ए।

एक 'पखड़ू' गीत में निराश नायिका ग्रपनी प्रतिकूल परिस्थिति एवं ग्रपनी भाग्यहीतता का वर्णन बड़े मार्मिक ढंग से करती हुई भाग्य-रेखाग्रों को बदल सकने में मनुष्य को ग्रसमर्थ बताती है। कितना मार्मिक चित्रण है :—

ग्रजी स्वर्गपुरी ते दो माणस उतरे, जी माणस उतरे,
ग्राई रहे ठण्डयां बागां कि बैठा पंछी झूरदा ए।
ग्रजी ग्रम्बे दिया डालिया कोयल बोल्ले, जी कोयल बोल्ले,
बोलदी सबद सुहायां कि बैंठा पंछी झूरदा ए।

अजी तू कजो झूरदा नमाणयां पंछिया, नमाणया पंछिया,
तिज्जो भी रिजक भतेरा कि बैट्ठा पंछी झूरदा ए।
अजी रिजक था से चिड़ियां चुगया जी, चिड़ियां चुगया,
मिजो ता रिजक है थोड़ा कि बैट्ठा पंछी झूरदा ए।
अजी नाली होवे लंघी जे जाइये जी लंघी जे जाइये,
कपाली लंघया नी जान्दीं कि बैट्ठा पंछी झूरदा ए।
अजी पोथी होवे वाची जे लइये जी वाची जे लइये,
करम वाचया नी जान्दे कि बैट्ठा पंछी झूरदा ए।
अजी अखर होए ता मेसी जे देइये जी मेसी जे देइये,
करम मेटेया नी जान्दे कि बैट्ठा पंछी झूरदा ए।

इसी प्रकार एक 'पखड़ू', में सास द्वारा पुत्र वधू को मार देने का बड़ा कारुणिक चित्र है :–

खरी वो कित्ती माए खरी वो कमाई,
हंसां दी जोड़ी बछोड़ी ए।

एक अन्य 'पखड़ू' में पति द्वारा अपनी पत्नी की हत्या का बड़ा हृदय-विदारक वर्णन है :–

अजी बाहियें बाहियें जी कन्त घरें आया,
मंगदा सोयां दा साग कि कन्धा दगेबाजिया।

इस प्रकार असंख्या 'पखड़ू' कांगड़ी लोक-गीतों में विद्यमान हैं। परन्तु ज्यों-ज्यों वृद्धा महिलाएं अपनी यह लीला समाप्त करती जा रही हैं और नव यौवनाओं में फिल्मी गीतों की ओर झुकाव बढ़ रहा है, ये हृदय की गहराई तक उतरने वाले मर्म स्पर्शी लोक-गीत विस्मृति के गर्त में गड़ते जा रहे हैं। आवश्यकता है इस भण्डार के बचाने और सुरक्षित रखने की। अतः इन गीतों को न केवल लिपिबद्ध करके ही सुरक्षित रखा जाए बल्कि इनकी मौलिक स्वर लहरी का ध्वन्यांकित कर लिया जाना भी अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि भावी पीढ़ियों को इन कोमल भावों की कोमल शब्दावली के साथ-साथ कोमल लय एवं स्वर की जानकारी होना भी अवश्यक है।

राजकीय उच्च विद्यालय,
पपरोला–१७६११५,
जिला कांगड़ा (हि०प्र०)

—●—

यशपाल के उपन्यास
'पार्टी कामरेड' की नारी–'गीता'

–केहरसिंह 'मित्र' भूम्पालवी

गीता, 'पार्टी कामरेड' की भारत की स्वतन्त्रता से पूर्व परतन्त्रता की शृंखलाओं को तोड़ने में नारी के योगदान व बलिदान की सच्ची कहानी है, जोकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए पुरुष से कन्धे से कन्धा मिला कर चली, अपने ही समाज के अनेक अत्याचार सहे, विकट प्रतिकूल परिस्थितियों को भी अपने अनुकूल बनाया, नीच विचारों को जिन्हें वेद शास्त्र बदल न सके, मन्दिर की घण्टियों और शंखों की कर्कश ध्वनि झकझोर न सकी, नारी की सच्ची सहानुभूति और आदर तथा विश्वास ने क्षण भर में बदल कर रख दिया। भारत की स्वतन्त्रता प्राप्ति में नारी का क्या योगदान रहा ही लेखक का आशय भी है।

गीता इक्कीस वर्षीय मध्य वर्ग की पितृ-हीन शोध छात्रा है। जिस के घर में पन्द्रह वर्ष का भाई तथा बूढ़ी मां हैं। अब वह पुस्तकें मात्र उत्तीर्ण होने के लिए ही पढ़ती, शेष समय राजनीतिक बातों में ही खर्च होता। अब उसे परतन्त्र भारत की दुर्दशा का भी सारा ज्ञान हो गया है। पहले वह कांग्रेस की स्वयं सेविका बनी किन्तु शीघ्र ही 'कम्युनिस्ट' की सदस्या बन गई। उसमें संकोच और लज्जा का स्थान आत्म-विश्वास और साहस ने ले लिया है। वह इस उमर की होते हुए भी अपने लिए अब किसी प्रकार के रक्षक और पहरेदार की आवश्यकता अनुभव नहीं करती। वह अपनी पार्टी का साहित्य एवं समाचार-पत्र बेचती है। उसे अनेक दुष्ट तंग करते किन्तु वह किसी की परवाह न कर अपने कर्तव्य को उत्तेजित रखती है। लेखक के ही शब्दों में - "कामरेड लोगों ने अपने काम में गीता की सहानुभूति देख कर एक पर एक फन्दा उस पर डालना आरम्भ किया। पहले उसे चुपके-चुपके पार्टी का साहित्य बेचने को कहा—इतनी बड़ी सरकार जिस पार्टी को कुचल डालने के लिए परेशान थी उसकी सहायता के लिए कुछ कर सकने का सन्तोष गीता के लिए साधारण वस्तु न थी। फिर उन्होंने उससे अखबार बिकवाया और अब पार्टी के लिए चन्दा इकट्ठा करने के लिए उसके पीछे पड़े थे।"[1] किन्तु गीता नहीं चाहती कि वह इस प्रकार किसी से हाथ फैला कर चन्दा मांगे। वस्तुतः पार्टी की आज्ञा का अनुसरण करती है। उससे श्री निवास, पदमलोक और मेघनाथ आदि पार्टी के कामरेड ही बेतुकी बातें करते तो वह कभी-कभी खीझ भी उठती। फिर वह सोचती "जो लोग अनजान और मूर्ख हैं, उनकी टुचकारियों से परास्त हो जाए? जिसे देश को स्वतन्त्र कराने और संसार के पूंजीवाद और साम्राज्यवाद को उखाड़ फैंकने के काम में सहयोग देना हो वह भला ऐसे लोगों से परास्त हो जाए?"[2]

---

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ १८।
2. वही, पृष्ठ १८।

एक दिन गीता दल का समाचार पत्र 'जनयुग' सिनेमा के सामने सड़क पर हर एक ग्राहक के पास जाकर बेच रही थी। बम्बई के तीन प्रसिद्ध गुण्डे पदमलाल भावरिया, पत्तुलाल, सकून उसके पीछे लगे, अनेक प्रकार के अशिष्ट परिहास उसके लिए कर रहे थे। किन्तु गीता ने इस ओर कोई भी ध्यान नहीं दिया था। ज्यों ही वह समाचार पत्र बेचती उनके सामने से निकलती है तो वे आवाज देकर अखबार खरीदने के लिए उसे बुला लेते हैं। अखबार लेकर भावरिया गीता को दस रुपये का नोट देता है किन्तु गीता के पास बाकाया वापिस करने को पैसे नहीं थे अतः वह अपने पर्स में पैसे ढूंढ़ रही थी तो भावरिया कहता है –"जाने भी दीजिए, हो जाएगा।"[1] किन्तु गीता पास ही समाचार पत्र बेच रहे अपने साथी से पैसे लेकर बकाया उसे लौटाने जाती है तो वह बकाया लेने को इन्कार करता है। गीता उससे उसका नाम पूछ कर नौ रुपये चौदह आने की रसीद दे देती है। इस घटना से गीता की पार्टी के प्रति वफादारी की भावना अभिव्यक्त होती है। अगर वह चाहती तो इन पैसों को अपने पास भी रख सकती थी।

पार्टी के कार्यालय में गीता जब अपना हिसाब देने जाती है तो मेघनाथ, गीता के इतना मेहनत से 'जनयुग' बेचने पर भी नौ कापियां कम बिकने का आरोप लगाता है। पास ही बैठा मज़हर भी इस घात का अनुमोदन करता है। मज़हर गीता के चन्दे की कापी से हिसाब गिन रहा था कि उसकी नज़र नौ रुपये चौदह आने पर पड़ती है तो वह गीता से इन पैसों के सम्बन्ध में पूछता है परन्तु रसीद पर पदमलाल भावरिया पढ़ कर चौंक जाता है। वह गीता को बताता है कि वह एक प्रसिद्ध और खतरनाक आदमी है। परन्तु गीता इन बातों से जरा भी घबराती नहीं। उसे अपनी आत्मा पर भरोसा है कि उसकी पवित्रता पर कोई भी प्रतिघात नहीं कर सकता है। रंगा उसे भावरिया से सम्बन्ध जोड़ने तथा उससे पार्टी के लिए सहायता प्राप्त करने का परामर्श देता है। तो वह इस बात का प्रतिरोध करती है।

गीता एक पार्टी कामरेड के साथ-साथ बलिदान की साक्षात मूर्त और हमेशा सच बोलने का साहस रखने वाली नारी भी है जोकि प्रतिकूल परिस्थितियों के आगे घबरा नहीं सकती। एक बार 'कम्युनिस्ट' के केन्द्रीय कार्यालय को कांग्रेस व दूसरे लोगों ने आग लगा दी थी। अतः पार्टी का भारी नुकसान हुआ था। गीता को यह सब देख कर दुःख होता है, उसके दिल में उन लोगों के प्रति जिन्होंने कार्यालय को आग लगाई थी बदले की भावना प्रज्जवलित होती है किन्तु अनुशासन का उलंघन नहीं कर पाती।

दूसरे दिन वह 'पार्टी मेम्बरों' और सहानुभूति रखने वालों की सभा में जाती है। काफी वाद-विवाद के उपरान्त फिर से प्रैस को जल्दी ठीक करने का फैसला करने के लिए चन्दा इकट्ठा करके देने का फैसला लिया जाता है। गीता ने भी दो सौ रुपया इकट्ठा करके देने का वायदा किया। किन्तु जब व्यक्तिगत धन देने की बात चली तो गीता के पास पैसे न होने के कारण वह अपने गले का लाकेट दे देती है। सैक्रेटरी के पूछने पर कि वह लाकेट के

---

[1] गीता, पार्टी कामरेड, पृष्ठ १२।

सोमसी

सम्बन्ध में घर में क्या बतायेगी तो वह उत्तर देती है—"मैं कह दूंगी पार्टी को दे दिया है। जो होगा देखा जाएगा।"[1]

एक दिन गीता की बस अड्डे पर ही फिर भावरिया से मुलाकात हो जाती है किन्तु वह घबराती नहीं। वह उसके आग्रह पर निर्भय उसकी गाड़ी में बैठ जाती है। रेस्तरां में उसके साथ चाय पीते समय उसे अपनी पार्टी के कार्यक्रम से अवगत कराती है। यहां तक कि वह उसकी प्रत्येक गलतफहमियों को दूर करके उसके दिल में पार्टी के प्रति सद्भावना भी पैदा कर देती है। वह अब उसे निरन्तर पार्टी का समाचार-पत्र व साहित्य पढ़ाने का भी वायदा करती है। दूसरी बार जब वह उसे 'जनयुग' देने 'पण्डित' रेस्तरां में जाती है उस दिन भी उससे पार्टी के सम्बन्ध में काफी देर वार्तालाप करती है। भावरिया गीता को अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न कर रहा था अतः वह उसे आभूषण की दुकान पर ले जाकर कुछ आभूषण खरीद कर देना चाहता था किन्तु गीता आभूषण की उपेक्षा करती हुई कहती है — "मुझे ज्यूरी पहनने का शौक नहीं है क्यों पैसा बेकार फैंकोगे? .... आप रुपये दे दीजिये, हमारी पार्टी को जरुरत है।"[2] और उससे पार्टी के नाम पर दो सौ रुपये ले लेती है। जबकि वह अपने लिए जेवर भी खरीद सकती थी और ऐसी इच्छा प्रायः हर नौजवान लड़कियों की होती है। इस घटना से उसके दिल में पार्टी के प्रति कर्तव्य एवं निष्ठा की भावना प्रमाणित होती है। यद्यपि उससे इस प्रकार पैसा लेने पर पार्टी का विरोध भी होता है तथा मजहर, श्री निवास और मेवनाथ इस पर आपत्ति भी करते हैं।

वह केवल पार्टी के प्रति ही नहीं अपितु अपने घर में भी मां के कामों में हाथ बंटाना, अपने छोटे भाई से छेड़-छाड के प्रसंग उसके सुशिष्ट एवं एक सहनशील गृहणी के व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करते हैं। उसकी मां को अपनी बेटी पर गौरव है कि उसकी बेटी अपने छोटे भाई के साथ पैदल 'छोटे गणेशबाड़ी' से 'परेल' तक चल सकने पर भी थकावट महसूस नहीं करती है। वह गीता के निष्कलंक का दावा अपनी बिरादरी के बीसों मर्दों के बीच करने का भी साहस रखती है।

यद्यपि भावरिया गीता को दो सौ रुपये देकर अपनी योजना की सफलता समझता है और यह उसका गीता को अपने जाल में फंसाने का षड्यन्त्र था, तो भी दृढ़ निश्चयवान साहसी एवं चरित्रवान गीता इस प्रकार का अपने मन में कोई भी बुरा विचार न लाकर उसका सच्चे दिल से आदर करती है। वह उसके सम्बन्ध में अपनी पार्टी के सदस्यों की तुलना में सोचती है— "उस (गीता) के साथियों को अपनी विद्या, बुद्धि पर भरोसा है। अन्तराष्ट्रीय दाव-पेच की बातें करते हैं। उनके पीले-पीले चेहरे, रूखी जुल्फें, उन दुर्बल शरीरों से वे कितनी बड़ी-बड़ी

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ २८।
2. वही, पृष्ठ ३८।

बातें करते हैं लेकिन गली बाज़ार में उन्हें कोई पीट दे तो सिवाय एक वक्तव्य दे सकने के और कुछ नहीं कर सकते परन्तु इस भावरिया के लिए सुना है कि बीस पच्चास आदमियों को जब चाहे पीट दे या पिटवा दे। यूं संगठन की बात वह कुछ नहीं जानता एक प्रकार का मानवी पशु है। यदि इसे कोई भले काम की ओर लगा सके तो इसकी शक्ति उस काम में भी लग सकती है। आखिर है तो मनुष्य ही, अच्छा क्या और बुरा क्या ? मजदूर ही क्या सब भले हैं ? .... ताड़ी पीते हैं, जुआ खेलते हैं और क्या-क्या नहीं करते ? परन्तु क्या उनके सच्चरित्र बन जाने में उपेक्षा की जा सकती है ?"[1]

अगले सप्ताह जब गीता भावरिया को 'जनयुग' देने प्रोहित में गई तो पहले उसने पार्टी के निर्देशानुसार दो सौ रुपये की रसीद दी थी। इस बार भी गीता ने उसके साथ चाय पी और उसे कांग्रेस और कम्युनिस्ट की नीतियों में अन्तर भी बताया था। इस बार उसे भावरिया के शराबी होने का सन्देह होता है तो वह सोचती है—"हो सकता है इसे आदत हो। आदमी जैसी संगति में रहता है वैसी ही आदतें पड़ जाती हैं।"[2] वह चाहती है कि उसे शराब छोड़ने को कहे किन्तु उसे किसी अधिकार के न होने के कारण चुप रह जाती है। पिछले सप्ताह भावरिया ने उससे पिक्चर देखने का आग्रह किया तो उसने फिर कभी पिक्चर देख लेने का वायदा किया था। अतः वह आज अपनी मां से पांच रुपये मांग कर ले आई थी। वह उसके पैसों से पिक्चर देखना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि—"खर्च करने का बोझ उठाना मर्द की जिम्मेदारी है तो मर्द की ऐसी सहायता पाने का मूल्य चुकाना स्त्री की जिम्मेदारी हो जायेगी।" अतः वह उसकी सहायता का कुछ भी मूल्य चुकाने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं कर सकतीं थी और वैसे भी उसका ध्यय भावरिया के साथ रह कर ऐश-आराम करना नहीं बल्कि उसे पार्टी का अदम्य कामरेड बनाना था। किन्तु आज भावरिया पिक्चर देखने की अपेक्षा 'चपाटी' घूमने के लिए गीता को अपने साथ ले जाता है। 'नेपियर सी फेस' रोड पर समुद्र के किनारे से वे 'दादर' की ओर से होते हुए 'शिवाजी पार्क' से घूम कर घने कुंजो से घिरे बंगलों के बीच से जाते हुए 'माटुआ क्लब' के सामने उनकी गाड़ी रुक जाती है। गीता की सहमति पर ही वे दोनों उस बंगले में प्रविष्ट हो जाते हैं। किन्तु भीतर का दृश्य देख कर गीता के पांव तले की ज़मीन हिल गई। कमरे के भीतर भावरिया के अनेक साथी शराब पी रहे थे और एक स्त्री भी वहां बैठी उन्हें शराब पिला रही थी। उसके साथी गीता को यहां तक लाने की सफलता पर वाह-वाह से दाद देने लग जाते हैं। गीता कमरे से बाहिर ही खड़ी भावरिया को अपनी ओर धीरे से बुला कर जिस रास्ते से वह भीतर आई थी उसी रास्ते से वापिस मुड़ कर डबडबाती आंखों से बरामदे में आकर रुक गई। भावरिया भी उसके पीछे-पीछे ही आ गया था तो वह उससे आंखों में आंसू भरे रुंधे गले से झुंझला कर पूछती है—"किस लिए आप मुझे यहां लाए ? .... यह किसी भले आदमी के लायक जगह है ? ...... मैं तो तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।"

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ ३५।

2. वही, पृष्ठ ४५।

वह उसे वापिस लौटने की आज्ञा देती है और उसी प्रकार आंसू बहाती पूछती है—"यह आपको शोभा देता है ?"

उसकी इतनी बात ने भावरिया को झकझोर दिया। वह उसे उसके घर भी गाड़ी में बैठा कर छोड़ आया। इस बीच भी वह आत्म ग्लानी से कुंठित अपनी सफाई उसके सामने देने की हिम्मत न कर सका। भावरिया एक कुख्यात, अमीर गुण्डा था। वह चाहता तो गीता को उस कमरे से बाहिर न आने देता और उससे मन चाहा अवैध कुकर्म भी कर सकता था। किन्तु गीता के उस पर विश्वास, आदर और वास्तविक अपनत्व ने उसे ऐसा करने की हिम्मत नहीं होने दी।

वह सोच रहा था कि —उसका कितना अपमान हुआ है। अपमान के प्रतिकार में वह जान की बाजी लगाए बिना न रहता परन्तु गीता ने अपमान किया इस ढ़ंग से कि वह विवश थी। .."[1] लेखक के शब्दों में—"इन शब्दों में धमकी और गाली नहीं थी। आदर और विश्वास था। इस प्रकार उसे कभी किसी ने सम्बोधन नहीं किया था। (किस लिए आप मुझे यहां लाए थे? ..... यह किसी भले आदमी के लायक जगह है? ....मैं तो तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।) गीता ने इज्जतदार भला आदमी समझा था, इसलिए विश्वास कर जहां कहीं साथ जाने के लिए तैयार थी .....।" स्त्री को रोते उसने पहले भी देखा था। शिकायत से रोते और रोकर प्रतिहिंसा से गाली देते भी देखा था। स्वयं उसकी स्त्री कई बार सिर नोचकर उसके सामने रोई थी और अब निराश होकर बे-परवाह हो चुकी थी। स्त्रियों के ऐसे व्यवहार को उसने केवल छल समझा था। गीता वैसे दिखाकर नहीं रोई। वह रोना नहीं विवशता थी लेकिन भावरिया के साथ भी धोखा हुआ था।[2]

यहां तक कि वह उस दिन के बाद अपने साथियों से मिलना-जुलना व शराब पीना भी छोड़ देता है। वह इसी दुःख में दुःखी जाकर मन्दिर के बरामदे में बैठ जाता है तो वह सोचता है–"निरन्तर भगवान की पूजा उसके मन्दिर में होती रही और भगवान ने इता भी नहीं सुझाया जैसा आज इस लड़की ने।" उसके दिल में अपने साथियों के प्रति घृणा हो जाती है। ......"ऐसे आदमियों के साथ जाने की जरूरत ही क्या है? और दुनियां नहीं है क्या? मुझे क्या यह शोभा देता है? मैं क्या इसी लायक हूं।" उसने सोचा—"अच्छा ही हुआ भगवान जो करते हैं भलाई के ही लिए। भगवान की दया से यह घटना आज हो गई और जैसे बह कीचड़ से निकल आया।"

गीता उसकी गाड़ी में भी बैठी, रेस्तरां में इकट्ठे चाय पीते पार्टी के सम्बन्ध में वाद-विवाद भी किया और अनेक घने स्थानों से घूमती हुई गाड़ी में उस बंगले के भीतर से बाहिर आ गई किन्तु भावरिया उसके कौमार्य पर प्रतिघात नहीं कर सका। यहां पर गीता का आत्म-विश्वास चरित्रवानता और धैर्य यह सिद्ध कर देता है कि कोई भी बुरे से बुरा पुरुष किसी भी स्त्री की इज्जत पर हाथ नहीं डालता जब तक कि वह अपने सतीत्व पर टिकी रहती है।

---

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ ५१।
2. वही, पृष्ठ ५३।

बातें करते हैं लेकिन गली बाजार में उन्हें कोई पीट दे तो सिवाय एक वक्तव्य दे सकने के और कुछ नहीं कर सकते परन्तु इस भावरिया के लिए सुना है कि बीस पच्चास आदमियों को जब चाहे पीट दे या पिटवा दे। यू संगठन की बात वह कुछ नहीं जानता एक प्रकार का मानवी पशु है। यदि इसे कोई भले काम की ओर लगा सके तो इसकी शक्ति उस काम में भी लग सकती है। आखिर है तो मनुष्य ही, अच्छा क्या और बुरा क्या ? मजदूर ही क्या सब भले हैं ? .... ताड़ी पीते हैं, जुआ खेलते हैं और क्या-क्या नहीं करते ? परन्तु क्या उनके सच्चरित्र बन जाने में उपेक्षा की जा सकती है ?"[1]

अगले सप्ताह जब गीता भावरिया को 'जनयुग' देने प्रोहित में गई तो पहले उसने पार्टी के निर्देशानुसार दो सौ रुपये की रसीद दी थी। इस बार भी गीता ने उसके साथ चाय पी और उसे कांग्रेस और कम्युनिस्ट की नीतियों में अन्तर भी बताया था। इस बार उसे भावरिया के शराबी होने का सन्देह होता है तो वह सोचती है—"हो सकता है इसे आदत हो। आदमी जैसी संगति में रहता है वैसी ही आदतें पड़ जाती हैं।"[2] वह चाहती है कि उसे शराब छोड़ने को कहे किन्तु उसे किसी अधिकार के न होने के कारण चुप रह जाती है। पिछले सप्ताह भावरिया ने उससे पिक्चर देखने का आग्रह किया तो उसने फिर कभी पिक्चर देख लेने का वायदा किया था। अतः वह आज अपनी मां से पांच रुपये मांग कर ले आई थी। वह उसके पैसों से पिक्चर देखना नहीं चाहती थी। वह चाहती थी कि—"खर्च करने का बोझ उठाना मर्द की जिम्मेदारी है तो मर्द की ऐसी सहायता पाने का मूल्य चुकाना स्त्री की जिम्मेदारी हो जायेगी।" अतः वह उसकी सहायता का कुछ भी मूल्य चुकाने की जिम्मेदारी स्वीकार नहीं कर सकतीं थी और वैसे भी उसका ध्यय भावरिया के साथ रह कर ऐश-आराम करना नहीं बल्कि उसे पार्टी का अदम्य कामरेड बनाना था। किन्तु आज भावरिया पिक्चर देखने की अपेक्षा 'चपाटी' घूमने के लिए गीता को अपने साथ ले जाता है। 'नेपियर सी फेस' रोड पर समुद्र के किनारे से वे 'दादर' की ओर से होते हुए 'शिवाजी पार्क' से घूम कर घने कुंजो से घिरे बंगलों के बीच से जाते हुए 'माटुआ क्लब' के सामने उनकी गाड़ी रुक जाती है। गीता की सहमति पर ही वे दोनों उस बंगले में प्रविष्ट हो जाते हैं। किन्तु भीतर का दृश्य देख कर गीता के पांव तले की ज़मीन हिल गई। कमरे के भीतर भावरिया के अनेक साथी शराब पी रहे थे और एक स्त्री भी वहां बैठी उन्हें शराब पिला रही थी। उसके साथी गीता को यहां तक लाने की सफलता पर वाह-वाह से दाद देने लग जाते हैं। गीता कमरे से बाहिर ही खड़ी भावरिया को अपनी ओर धीरे से बुला कर जिस रास्ते से वह भीतर आई थी उसी रास्ते से वापिस मुड़ कर डबडबाती आंखों से बरामदे में आकर रुक गई। भावरिया भी उसके पीछे-पीछे ही आ गया था तो वह उससे आंखों में आंसू भरे रुंधे गले से झुंझला कर पूछती है—"किस लिए आप मुझे यहां लाए ? .... यह किसी भले आदमी के लायक जगह है ? ...... मैं तो तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।"

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ ३५।
2. वही, पृष्ठ ४५।

वह उसे वापिस लौटने की आज्ञा देती है और उसी प्रकार आंसू बहाती पूछती है—"यह आपको शोभा देता है ?"

उसकी इतनी बात ने भावरिया को झकझोर दिया। वह उसे उसके घर भी गाड़ी में बैठा कर छोड़ आया। इस बीच भी वह आत्म ग्लानी से कुंठित अपनी सफाई उसके सामने देने की हिम्मत न कर सका। भावरिया एक कुख्यात, अमीर गुण्डा था। वह चाहता तो गीता को उस कमरे से बाहिर न आने देता और उससे मन चाहा अवैध कुकर्म भी कर सकता था। किन्तु गीता के उस पर विश्वास, आदर और वास्तविक अपनत्व ने उसे ऐसा करने की हिम्मत नहीं होने दी।

वह सोच रहा था कि—उसका कितना अपमान हुआ है। अपमान के प्रतिकार में वह जान की बाजी लगाए बिना न रहता परन्तु गीता ने अपमान किया इस ढंग से कि वह विवश थी। .."[1] लेखक के शब्दों में—"इन शब्दों में धमकी और गाली नहीं थी। आदर और विश्वास था। इस प्रकार उसे कभी किसी ने सम्बोधन नहीं किया था। (किस लिए आप मुझे यहां लाए थे ? ..... यह किसी भले आदमी के लायक जगह है ? ....मैं तो तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी।) गीता ने इज्जतदार भला आदमी समझा था, इसलिए विश्वास कर जहां कहीं साथ जाने के लिए तैयार थी ..... ।" स्त्री को रोते उसने पहले भी देखा था। शिकायत से रोते और रोकर प्रतिहिंसा से गाली देते भी देखा था। स्वयं उसकी स्त्री कई बार सिर नोचकर उसके सामने रोई थी और अब निराश होकर बे-परवाह हो चुकी थी। स्त्रियों के ऐसे व्यवहार को उसने केवल छल समझा था। गीता वैसे दिखाकर नहीं रोई। वह रोना नहीं विवशता थी लेकिन भावरिया के साथ भी धोखा हुआ था।[2]

यहां तक कि वह उस दिन के बाद अपने साथियों से मिलना-जुलना व शराब पीना भी छोड़ देता है। वह इसी दुःख में दुःखी जाकर मन्दिर के बरामदे में बैठ जाता है तो वह सोचता है—"निरन्तर भगवान की पूजा उसके मन्दिर में होती रही और भगवान ने इता भी नहीं सुझाया जैसा आज इस लड़की ने।" उसके दिल में अपने साथियों के प्रति घृणा हो जाती है। ....."ऐसे आदमियों के साथ जाने की जरूरत ही क्या है ? और दुनियां नहीं है क्या ? मुझे क्या यह शोभा देता है ? मैं क्या इसी लायक हूं।" उसने सोचा—"अच्छा ही हुआ भगवान जो करते हैं भलाई के ही लिए। भगवान की दया से यह घटना आज हो गई और जैसे वह कीचड़ से निकल आया।"

गीता उसकी गाड़ी में भी बैठी, रेस्तरां में इकट्ठे चाय पीते पार्टी के सम्बन्ध में वाद-विवाद भी किया और अनेक घने स्थानों से घूमती हुई गाड़ी में उस बंगले के भीतर से बाहिर आ गई किन्तु भावरिया उसके कौमार्य पर प्रतिघात नहीं कर सका। यहां पर गीता का आत्म-विश्वास चरित्रवानता और धैर्य यह सिद्ध कर देता है कि कोई भी बुरे से बुरा पुरुष किसी भी स्त्री की इज्जत पर हाथ नहीं डालता जब तक कि वह अपने सतीत्व पर टिकी रहती है।

---

1. गीता पार्टी कामरेड, पृष्ठ ५१।
2. वही, पृष्ठ ५३।

गीता इस घटना के उपरान्त भावरिया से फिर नहीं मिली थी। एक दिन 'गीता' और साथी लड़के 'कामरेड' को 'ड्राम स्टेंण्ड' से गुजरते हुए कुछ लड़के 'ओए-ओए' तथा अशिष्ट बातें कह कर तंग कर रहे थे कि दूसरी ओर से भावरिया निकल आता है। वह गीता को देखकर शरारती लड़कों को उनकी अशिष्टता पर धमकाता है तो एक आदमी उसकी धमकी का भी प्रतिवाद करता है। इस पर वे आपसी मार-पीट पर उतारू हो जाते हैं। समय पाकर गीता और साथी वहां से 'खिसक' जाते हैं। आज वही भावरिया जो एक शराबी, गुण्डा और गीता को अपने जाल में फंसाने का प्रयास कर रहा था के मन में गीता के प्रति कितनी सहानुभूति व श्रद्धा थी कि वह उसका इस प्रकार अपमान नहीं देख सका।

किन्तु यही घटना समाज के विशैले तत्वों ने अखबार में बढ़ा चढ़ा कर छपवा दी — 'कम्युनिष्ट सखी गीता के लिए गुण्डों के दलों में मार-पीट। कम्युनिष्ट सखियां शृंगार करके मन-चले जवानों को 'जनयुग' पढ़ाने निकलती हैं, इसके परिणाम से होने वाली घटनाओं का यह उदाहरण है। जनता ऐसे अनाचार की उपेक्षा कब तक करेगी। जब गीता की मां के कान में इस अखबार में छपे समाचार का पता चलता है तो वह गीता को बहुत फटकारती है और उस पर बाहिर जाने का भी प्रतिबन्ध लग जाता है। गीता इस घटना से बहुत दुःखी हुई, यहां तक कि दिन भर शर्म की मारी बाहिर नहीं निकलती और इस घटना का प्रदुर्भाव उसके स्वास्थ्य पर भी पड़ता है। यहां पर नारी की दीन-हीन दशा तथा विवशता का अवलोकन हुआ है। सबला ने देश की स्वतन्त्रता के लिए कितना महान सहयोग दिया फिर भी अपने ही क्रूर समाज से अपमानित हुए बिना न रह पाई :

आठवें दिन छोटे भाई शामू की सहायता से फिर अपनी पार्टी के सदस्यों के साथ मिली। अखबार में छपे झूठे समाचार पर उसकी पार्टी द्वारा ही 'इन्क्वारी' की गई। गीता से पार्टी का 'सैक्रेटरी' अनेक प्रश्न पूछता है। उसे इस बात के लिए दोषी ठहराया जाता है कि दो सौ रुपये जो पार्टी को ही दिए थे व्यक्तिगत रूप से मिले थे उस पर भावरिया के साथ चार-पांच बार मिलने तथा पार्टी में इन बातों का जिक्र न करने का आरोप भी लगाया जाता है। उस पर 'माट्वा' कलब के जाने और वहां शराब पीने तथा वहां कंचनी होने के सम्बन्ध में स्पष्टीकरण मांगने पर गीता इस बात को स्वीकार कर इसे अपनी व्यक्तिगत भूल भी मान लेती है तो सैक्रेटरी इस बात का आरोप लगाता है कि उसने इस घटना का वर्णन पार्टी में क्यों नहीं किया। किन्तु वह इस घटना को छुपाने के अतिरिक्त कर भी क्या सकती थी। वह नारी थी और आखिर उसे अपनी इज्जत का भी ख्याल था। अगर वह पार्टी के सदस्यों को बता भी देती तो मज़हर, रंगा, श्री निवास, पदम लोक आदि इस घटना से उसे अपनी बेतुकी बातों से अतिरिक्त तंग करने के और कुछ न करते। इसने पहले भी भावरिया के मिलने की बात की थी तो उन्होंने उसे कितना कुछ कह कर तंग किया था। यदि गीता ने यह घटना गुप्त रखी तो कुछ भी गलत नहीं किया था। फिर भी गीता को दोषी ठहरा कर उसकी तीन मास की सदस्यता जुर्माना के रूप में स्थगित कर दी गई थी और उसने सहर्ष उसे अनुशासन-वद्ध स्वीकार कर लिया था।

यद्यपि गीता इतनी दोषी नहीं जितना कि उसे माना गया। क्योंकि उसने जो कुछ किया

वह अपने लिए नहीं प्रत्युत पार्टी के अर्पण था। वास्तव में वह उसे पार्टी कामरेड बनाना चाहती थी। यह उसी के ही व्यक्तित्व का प्रभाव था कि भावरिया जैसा एक कुख्यात गुण्डा बदल कर देश भक्त बनकर ब्रिटिश सरकार के विरूद्ध आन्दोलन में अन्य मर्दों की तरह अंग्रेजी पुलिस को ललकारता शहीद हो गया।

नारी अपने सच्चे प्रणय से पुरुष को भले से बुरा और बुरे से भला भी बना सकती है। इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब भी पुरुष ने बड़े-बड़े काम किए, वह महान् बना तो उसका सारा श्रेय नारी को ही जाता है चाहे वह किसी भी रूप में क्यों न हो। वह जहां घर की शोभा है वहां युद्ध की विरांगना भी है। वह अपने प्रेम, सहानुभूति, अपनत्व, धैर्य, सहिष्णुता से उन शक्तियों पर भी विजय पा सकती है जिनके आगे दुनियां की अनेक शक्तियां अभिभूत हो जाती हैं। भावरिया जैसे कुख्यात गुण्डे को क्षण भर में उस नर्क की जिन्दगी से बाहिर निकालना गीता जैसी नारी का ही काम था। इसके साथ लेखक इस उपन्यास के माध्यम से जन मानस को यह भी परिचित करा देना चाहता है कि स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए नारी का भी अदम्य सहयोग रहा है।

गांव अम्बी, डाकघर सध्याल
जिला हमीरपुर, (हिमाचल प्रदेश)

बूझणी

—पन्ना लाल जोगटा

महासुवी भाषा में बूझणी पहेलियों को कहते हैं। अन्य भाषाओं की भान्ति इस भाषा में भी बूझणियों का विशेष महत्व है। यह बूझणियां दन्त-कथा के आधार पर युग-युगान्तर से प्रचलित हैं। शिमला जिले का ऊपरी महासू क्षेत्र एक पहाड़ी भू-भाग है जो शीतकाल में पोष से फाल्गुण मास तक हिमाच्छादित रहता है। सर्वप्रथम तो यह क्षेत्र दुर्गम है और हिमाच्छादित रहने के कारण यातायात दुष्कर है। पुरातन काल में जब न तो यातायात की कोई सुविधा थी और रेडियो, सिनेमा जैसी आधुनिक मनोरंजन की सुविधाएं भी उपलब्ध नहीं थीं तो जन साधारण को शीतकालीन समय काटना दुभर हो जाता था। इन परिस्थितियों में बड़े-बूढ़े लोगों ने लोक-कथाओं तथा बुझणिओं का आदान-प्रदान करने की अत्युत्तम युक्ति निकाली जो न केवल समयापन है परन्तु इस प्रकार की कहानियां पूर्वजों के कटू अनुभवों तथा प्रत्युत्पन्न मति का द्योतक है। अतः बूझणियां अत्यधिक मनोविनोद वाली एवं शिक्षाप्रद हैं।

शीतकाल में कई परिवारों के लोग एक स्थान पर एकत्रित हो जाते हैं। इस क्षेत्र में इन्धन की लकड़ी का भण्डार है और बर्फ के दिनों में तो आग वैसे भी अधिक प्रिय लगती है। चुल्हा गर्म रहता है और आग के चारों ओर बैठ कर तथा भेड़-बकरियों की ऊन कातते हुए भोले-भाले लोग बूझणियों का आदान-प्रदान करते हैं। उपस्थित जन समूह से कोई एक मनुष्य दूसरे को प्रश्न के रूप में बूझणी कहता है। दूसरा व्यक्ति उसका उत्तर देता है। सन्तोषजनक उत्तर देने पर वह पहले व्यक्ति को प्रत्युत्तर में दूसरी बूझणी कहता है। इसी प्रकार से बूझणी का क्रम चलता है और कभी-कभार तो यह क्रम अर्ध-रात्रि तक निरन्तर रहता है।

कुछ बूझणियों का व्याख्यात्मक उल्लेख निम्न है तथा उत्तर कोष्ठक में सामने दिया गया है :—

१. बौणी आओ बौणी जाओ, बणी कियो घरबास,
छौआ महीना बरखा लगे, झिग न भिजे पाख। **(खरालू भितलो कीड़ा)**

यह पहेली एक विशेष प्रकार के कीड़े से सम्बन्धित है जो प्रायः जंगलों में वृक्षों इत्यादि में लटका पाया जाता है। कीड़ा चारों ओर से रूई की भान्ति एक नर्म मुलायम पदार्थ से ढका रहता है तथा धूप एवं वर्षा का उस जीव पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। पहेली के अनुसार प्रश्न है कि वह

कौन सा जीव है जो वनों में ही जन्म लेता है और वन में ही वह स्थायी रूप से रहता है। जिस जीव के छः महीने अर्थात् लगातार वर्षा लगने पर भी उसका न सिर भीगता है और न ही पंख या शरीर का कोई अंग।

का घूघू का घूघू रो पेट,
घूघू हांडा मेरा माण्डी-सकेत। (तूल-तोलने का छोटा तराजू)

तूल के दोनों पलड़ों की गहराई केन्द्र-बिन्दू की ओर अधिक होती है। तूल छोटा सा होता है लेकिन कार्य पूरा तराजू का करता है। साथ ही छोटा सा होने के कारण देश के कोने-कोने में यह तराजू सैर कराता है।

पांजा चोरा गांठड़े चूंगे छाड़े दरकार।
लाल बीबीया धाको दिणो पाए अटका पार।

(पांच अंगुलियां, जीह्वा तथा पेट)

पांच अंगुलियां भोजन के ग्रास को दरकार (मुख) में रख देती हैं। चबाने के पश्चात् लाल बीबी (जिह्वा) ग्रास को धक्का मारकर अटका पार (पेट) में डाल देती है।

आर बी मुगुत पार भी मुगुत,
मुंआं री पीठीए जींवदो पड़ो ता पो पड़े जुगुत।

(लुआटा-एक विशेष प्रकार का हस्त निर्मित जूता)

जब देश में जूते बनाने के उद्योग स्थापित नहीं थे तो लोग गाय, बैल आदि पशुओं की खाल उतरवाकर रंग-बिरंगे धागों से बुनकर उसका आकर्षक जूता बनाते थे। इस पहेली का सम्बन्ध उन्हीं जूतों से है। आर भी मुगुत पार भी मुगुत का तात्पर्य जूतों की जोड़ी से है। मृत पशु की खाल तो बेजान थी परन्तु उसका उपयोग जूते के रूप में करके और भी मजा आया।

सरगा हांडी सरूपणी नेवला हांडी नाली,
आगा हांडा जगट-मगट पछा राजा री बगारी। (कारघा–बुनने का यन्त्र)

यह पहेली करघा नामक एक कपड़े बुनने के यन्त्र से सम्बन्धित है जिसकी बनावट खड्डी की भांति होती है। सरगा हांडा सरूपणी का अर्थ है बुनने वाले के सिर पर धागे का विछा जाल और नीचे धागों से भरी हुई खोखली लकड़ी की छड़ें जो ईधर उधर चलती हैं।

झरा रे गाओ झर–झरांदे,
पौल देआ दुधारो घास न खांदे। (कोल्हू)

तेल निकालने वाली मशीनों के आविष्कार से पहले कोल्हू में तेल के बीज पीसकर उसमें से तेल निकाला जाता था। इस पहेली में कोल्हू को गाय की उपमा दी गई है। गाय (कोल्हू) झर-झर का स्वर निकालता हुआ सारा दिन कार्य करता है। वह पौल ($\frac{1}{2}$ लीटर के लगभग असीमित) दूध (तेल) निकाल कर भी घास नहीं खाता।

कालो ही हांडकू कालो ही भात,
सीत हांडकूम्रा घूटा घाट। (शेगुल-कैंथ का फल)

शेगुल के फल का रंग अन्दर-बाहर काला होता है। हांडकू (वर्तन) का तात्पर्य यहां फल के बाहरी छिलके से है तथा भात (चावल) उसका अन्दरूनी रस है। कैंथ का फल साधारणतया छिलके समेत ही खाया जाता है। अन्तिम पंक्ति उसी से सम्बन्धित है।

रिख डौणे बाघ रूवाड़ी
घोरडा-काकड़ा दिणी चुम्राड़ी। (घराट—चक्की)

पानी से चलने वाली चक्की के भवन की दो मंजिलें होती हैं। निचली मंजिल में लकड़ी या लोहे का एक विशेष प्रकार का यन्त्र होता है जिस पर जल की तेज प्रवाह करके उसे घुमाया जाता है। इस प्रकार घराट चलता है। डोणे (गुफा) का भावार्थ निचली मंजिल से है तथा रूवाड़ी (गुफा) का मतलब ऊपर वाली मंजिल से है जहां पर चक्की पिसाई होती है। उस डण्डे को घोरल-काकड़ नामक जंगली जानवरों की उपमा दी गई है जो आपातकालीन समय में जब यदि घराट न चले और कुछ अनाज चक्की के मध्य पीसने को रह जाए तो हाथ से भी चालक पीसा हुआ अनाज निकाल देता है।

ढाल बी कांबा तरार बी कांबा
राजा रों बेटी पाणे मॉंगा। (घराट)

यह पहेली भी पानी से चलने वाली चक्की से सम्बन्धित है। पहेली में घराट को राजा के बेटे की संज्ञा दी हुई है जिसमें हर समय पानी चाहिए। घराट चलने की प्रक्रिया के समय उसके विभिन्न यन्त्र गतिशील रहते हैं जिन्हें ढाल-तलवार की संज्ञा दे रखी है।

आठ—आठली बारहा वाउली
चार चौकी दुई नीकी। (क्रमशः सुअरी, गाय तथा बकरी के थन

राते बाकरे पींउले बो
तैंम्रा खाएम्रा घाणा पन्द्रीशो। (लाल मिर्च)

लाल मिर्च के अन्दर पीले रंग के दाने होते हैं। अतः मिर्च को बकरी की उपमा दे रखी है तथा उसके अन्दर के दोनों को पीली चर्वी। मिर्च को खाने से १५०० मनुष्य (यानि अनगिणत) लोग तृप्त हो जाते हैं।

टूरे बाकरे टूरमा टूरे
तीम्रां रो न लागदो खोज न खूरे। (चींटी)

यहां पर चींटी को काले रंग की बकरी का काल्पनिक नाम दिया हुआ है। चींटी जब एक स्थान से दूसरे स्थान पर जाती है तो उसके पद-चिन्हों का पता लगाना असम्भव होता है।

टीं टींटे टींटे डाले।
मुंह धारको छोंटे काले। **(लींगड़ा–जंगली सब्जी का नाम)**

इस पहेली में प्रश्न किया गया है कि वह कौन सी वस्तु है जिसका केवल एक ही तना या शाखा है तथा जिसका मुख विकृत (टेढा) है और छोंटी (ठोडी) काले रंग की है। लींगड़ा एक जंगली सब्जी है जो प्रायः छोटे-छोटे नदी-नालों में पाया जाता है। इसका पौधा लगभग एक फुट ऊंचा होता है तथा ऊपर से इसकी चोटी अन्दर की ओर मुड़ती हुई एक छोटा चक्र सा बनाती है। इसकी सब्जी बहुत स्वादिष्ट होती है।

हरे जुबड़े बाँईदे नाहीं
रेवशा रग्र लाकड़ो नईंदो नाहीं
भाजड़ो दामटू दईंदो नाहीं। **(आकाश, सर्प, लकड़बघा)**

पहली पंक्ति में आसमान को एक नीली जुबड़ी (खेत सा सीधा स्थान) की उपमा दे रखी है जिस पर हल नहीं चलाया जा सकता। दूसरी पंक्ति (रेवशा रो लाकड़ो) का तात्पर्य सर्प से है तथा तीसरी पंक्ति में लकड़बघे को काले और सफेद रंगों तथा आंखों को चुंधियाने वाले हल लगाने योग्य बैल की उपमा दे रखी है जो हल में नहीं लगाया जा सकता।

कुम-कुम कुम कराई
चवाड़ डांगरी भुज पशाई
शुमा शुणी हेजदी आई। **(शड़गी)**

शड़गी का तात्पर्य फाल्गुण मास के मध्य के उस विशेष समय से है जब खूब ठण्डी तथा तेज हवाएं चलती हैं तथा इस समय गौशालाओं से गोबर नहीं निकाला जाता है।

बारहे खा शण-पण
भीतरे खा टण-पण। **(जोड़ी)**

बारहे खा आए भीड़ेआ
बामेंआं भीतर जा नंगे। **(जोड़ी)**

उपरोक्त दोनों पहेलियों में प्रश्न किया गया है कि वह कौन सी वस्तु है जो घर में प्रवेश करते समय तो बन-ठन कर तथा सुन्दर कपड़ों से सुसज्जित प्रवेश करती है लेकिन वापिस नग्न-अवस्था में आती है। जोड़ी या वृक्षों की पत्ती 'मौरु' नामक वृक्ष के पत्ते एकत्रित करके पुलियां बना कर भेड़-बकरियों को दी जाती है। जोड़ी को जब पशुओं को डालते हैं तो पत्तों से ढकी रहती है। भेड़-बकरियों के पत्तियां खा लेने के पश्चात् वह एक नग्न अस्थिपिंजर सा लगता है।

कूंकडो किडो चढ़ो डाला
झाड़ो-पिड़ो झाकड़ू नाला। **(पत्तियां काटने का द्राट)**

इस पहेली में पत्ती काटने वाले द्राट को जिस की नोक ऊपर से मुड़ी हुई होती है, एक वक्र कीड़े का काल्पनिक नाम दे रखा है। पत्तियां काटने के लिए पेड़ पर चढ़ कर शाखाओं की काट-छांट द्राट द्वारा वृक्षों की शाखाएं काट कर भूमि पर गिरा दी जाती हैं।

लम्बे लाजे शों चार
अदमी बाटे द करा हुंकार।   (नरशींग–नरसींगा बजाने का यन्त्र)

उपरोक्त में प्रश्न किया गया है कि वह कौन सी वस्तु है जिस की लम्बाई चार हाथ है तथा आधा रास्ता पार कर लेने के पश्चात् वह हूंकार की ध्वनि से गूंजता है। 'नरशींग' एक पुराने समय से चला आ रहा एक वाद्य यन्त्र है जो देवी देवताओं के पदयात्रा के समय बजाया जाता है। इसका आकार अंग्रेजी अक्षर 'S' की भान्ति होता है। इसका निचला भाग अधिक खोखला होता है परन्तु दूसरा भाग अधिक खोखला तथा ऊपर की ओर उठा रहता है। इसके निचले भाग से जोर से फूंक दी जाती है जिससे दूसरे भाग से कड़कती ध्वनि निकलती है। देवताओं की पदयात्रा या विवाहों में यह प्रायः ध्वनित किया जाता है।

आर छलाको पार छलाको
मंझ नएद फूल फलाको।

उपरोक्त में ऐसी वस्तु के विषय में प्रश्न किया गया है कि जो नदी के दोनों किनारों में लहरों के टकराव के फलस्वरूप उत्पन्न होता हो। इसमें घड़ी (दहीं मथने वाले बर्तन) को नदी का काल्पनिक नाम दे रखा है। जब घड़ी को हाथों से हिलाते हैं तो उसके अन्दर रखा दही इधर-उधर लहरों की भांति घड़ी के किनारों से टकराता है। परिणाम स्वरुप बर्तन के केन्द्र में मक्खन फुल की भांति दिखता है।

कोशा गिश कोशो
तैंआ गिश गणपत बोशो।

(हारा)

हारा लकड़ वाले फर्श पर नीचली या ऊपर वाली मंजिलों में प्रवेश करने के लिए 2×2 फुट के लगभग लकड़ी का एक उपद्वार सा होता है जिसके चारों किनारों की लकड़ी लम्बाई-चौड़ाई में फर्श के स्थान से ऊंची रखी जाती है ताकि वह उपद्वार पर टिका रहे तथा आवश्यकता अनुसार उसे खोला तथा बन्द किया जा सके।

लौ भीड़ी लस्कर चालो
नेडल गुड़ो पर्वत हालो।

(चीलम–हुक्का)

हुक्के के निचले भाग में पानी भरा रहता है तथा चोटी पर मिट्टी की कटोरी होती है। जिसमें तम्बाकू डालकर आग डाली जाती है। हुक्का पीने वाला निचले भाग से तम्बाकू का कस लेता है जिससे पानी में गुड़-गुड़ की ध्वनि होती है तथा कटोरी में तम्बाकू जलने के फलस्वरूप धुआं निकलता है। पहेली में हुक्के के निचले भाग को नेऊल। (तलहटी के गर्भ भाग) तथा हुक्के की कटोरी को पर्वत (ऊंचे पहाड़) का काल्पनिक नाम दे रखा है।

शुको बोंई हरो राजा
पींऊंला फूला रे पींटे बाजा।   (पेठा)

पेठा नामक फल के बीज को पहले सुखाया जाता है तत्पश्चात् खीरे के साथ-साथ या पृथक से बोया जाता है। पहेली में प्रश्न किया गया है कि ऐसी कौन सी वस्तु है जो सुखा कर बोई जाती है, उसका पौधा साधारण पौधों की भान्ति हरा-भरा उगता है। दूसरी पंक्ति में स्पष्ट करते हुए कहा गया है कि उसके पौधे का फूल पीला होता है तथा फूलते समय चोटी पर पीले रंग का एक गुच्छा सा बन जाता है।

हों बानों तेरी तेंईयां
तू मोरो मेरी तेंईयां। (ज्वाली का कीड़ा)

छोटे-बड़े पक्षियों को लालयित करने के लिए पत्थर के नीचे कीड़ा इत्यादि इस प्रकार से बांधा जाता है कि जैसे ही कोई पक्षी पत्थर के नीचे कीड़े को नोचने का प्रयत्न करे तो स्पर्श स्वरूप पत्थर पक्षी के ऊपर आ जाता है और पक्षी मर जाता है। पहेली में कीड़े का प्रतिनिधित्व करते हुए मरने वाले पक्षी को सम्बोधित करते हुए कहा गया है कि मुझे तो तेरी जान लेने हेतु इस स्थान पर बांधा गया है। न तो तू मुझे अपना भोजन बना सका तथा व्यर्थ में अपनी जान भी गंवा बैठा।

पारे ओरु आए भाओले बूढ़े
तींआं री मांदेद जेबड़े घुड़े। (शुईंण–झाडू)

झाड़ू एक विशेष प्रकार की लम्बी घास से बनाया जाता है ताकि झाड़ू देते समय कोई तिनका न छूटे। पहेली में सुतली वाले भाग को मांद (पेट) की संज्ञा दे रखी है तथा लम्बी सूखी घास को भोली-भाली बूढ़िया की संज्ञा दे रखी हैं।

पारे ओरु आओ चार पचीकण
इण बोल आपणा बाबा ख बाहर निकल। (शींब)

पहेली में शींव (नाक के मार्ग से निकने वाला द्रव्य) को पचीकण (बदमाश) का काल्पनिक नाम दिया गया है।

शुक-शुक डिबटे फुल-फुल पाच
तैंआ गीश बोठो रामसिंह भाट। (डोडी–अफीमदाना)

पेटा भीतरी दांद कारा होंआ। (डोडी–अफीमदाना)

पेटा भीतरी तरारी। (डोडी–अफीमदाना)

उपरोक्त तीनों पहेलियां अफीमदाने के पौधे के चोटी वाले भाग जिस पर अफीमदाना का फल लगा होता है, से सम्बन्धित है लेकिन उपरोक्त बुझणी में इसको भिन्न-२ रूप में दर्शाया गया है। पहली पहेली में यह कहा गया है कि पहले अफीनदाने का पौधा फूलता है। फिर विशेष प्रकार के औजारों से फल को खुर्च कर अफीम नामक मादक पदार्थ निकाला जाता है और अफीमदाने

के फल को पंडित रामसिह का काल्पनिक नाम दिया गया है। अफीमदाने के फल के अन्दर तलवार की भांति खड़े दांत से होते हैं जिससे अफीमदाना (पोस्तदाना) निकलता है। दूसरी तथा तीसरी पहेली में दांत को तलवार की उपमा दे रखी है।

चुलो भी नाहीं चौको भी नाहीं।
लाता फलैग्रा रोटी खा। **(मुर्गा)**

पहेली में प्रश्न किया गया है कि ऐसी कौन सा जीव है जो खाना पकाने के लिए न चुल्हा चौका करता है अर्थात् खाना पकाने के लिए न चुल्हे का प्रयोग करता है न ही खाने के बाद झाड़ू इत्यादि देता है तथा पांव फैलाकर सीधा करके खाना खाता है। इस प्रकार का जीव मुर्गा होता है।

शों डोखरे पाथो बीज। **(मधुमक्खी)**

ऐसा कौन सा अनाज है जो केवल एक हाथ लम्बे (1½ गज) खेत में बीजा जाता है। लेकिन खेत के लिए एक पथा (अनाज को नापने के लिए एक बर्तन जिसमें लगभग डेढ़ किलो अनाज आता है) बीज के रूप में लगता है। मधु मक्खियों को एकत्र करने के लिए लगभग एक हाथ लम्बी लकड़ी का तख्ता लिया जाता है। उस पर गुड़ लगाकर मधु-मक्खियों के झुण्ड के समीप रखा जाता है। मधु-मक्खियों की रानी गुड़ खाने हेतू तख्ते में चिपक जाती है। तत्पश्चात् सारी मधु-मक्खियां उस लकड़ी पर एकत्रित हो जाती है और उन्हें घर में लाकर एक विशिष्ट स्थान पर रखा जाता है।

परैणा घर नवो पा चेऊल। **(ठालको-पुरानी चपकन)**

पहेली में पूछा गया है कि ऐसी कौन सी वस्तु है जो वास्तव में तो पुराना घर है लेकिन घर की दिवारें तैयार करने हेतू उसमें नया चेऊल दिवारों को पक्का करने हेतू स्लीपर की भांति एक चार कोने वाली लकड़ी पड़ती है। उनकी पुरानी चपकन (कोट की भांति लम्बा वस्त्र) को रंग-बिरंगे धागों से इस प्रकार दोबारा सूई धागे से बुना जाता है कि वह पर्याप्त मोटा तथा मजबूत होकर शरीर को सर्दी से बचाए रखे। पहेली में चपकन को पुराने घर की संज्ञा दे रखी है तथा उसमें दोबारा बुने गए धागों को चेउल।

पार ढोका सुना रो चरू
तैंग्रा देखेग्रा किणो करू। **(सूरज)**

पहेली में आकाश को ढंकार या उसमें बनी गुफा की संज्ञा दी गई है तथा सूर्य को सोने का बर्तन।

फिश्का नाका पदाड़का मुंहां
जागहा–जागी मिला तुमा। **(ददरानू–मेंढक)**

मेंढक का नाक लगभग समतल होने के कारण उसकी मुख-आकृति भद्दी लगती है विशेषकर वर्षा ऋतु में मेंढक जहां-तहां मिलते हैं।

सोमसी

चूंजटे चुणा पूंजटे बुणा । **(सूई-धागा)**

उपरोक्त में प्रश्न किया गया है कि ऐसा कौन सा पक्षी है जो चूंजटी (चोंच या चोटी) से तो खाता है। (या कार्य करता है) तथा पूंछ के किनार से बुनाई करता है।

बी बरींदा रा कोशो एक । **(कलूण)**

कलूण लकड़ी के एक लम्दे 'स्लीपर' की भांति बर्तन सा होता है जिसकी बीच से खुदाई करके उसमें भेड़-बकरियां नमक, पत्ती इत्यादि खाद्य पदार्थ डाले जाते हैं तथा पालतू जानवर उसके दोनों तरफ एकत्रित होकर बड़े चाव से खाते हैं।

एक गाचे मेरा बामू–बामू से नहीं बामीदे । **(रास्ता)**

पहेली में पहाड़ों में बने संकरे मार्ग को गाची की उपमा दे रखी है। गाची एक तीन गज के लगभग बारह गिरहा चौड़ा कपड़े का नाम है जो प्रायः ठण्डे स्थानों में रहने वाली महिलाएं सर्दी से बचने के लिए पेट पर चपकन के ऊपर गोलाई के आकार में पहनती हैं। पहेली में पूछा गया है कि मेरे पास एक ऐसी गाची है जो शरीर पर गोलाकार पहनने पर उसकी लम्बाई बढ़ती रहती है।

आपू खा फिरो पको
बाहरी बिल थाको । **(शाणो-जन्दा)**

ताला कमरों की रक्षा करता तो है लेकिन स्वयं कमरे से बाहर ही रहता है। पहेली में कहा गया है कि ताला अपने आपको विशिष्ठ बुद्धि वाला समझता है लेकिन अभिमान का सिर नीचा। बुद्धिमान होने पर भी वह घर या कक्ष से बाहर ही रखा जाता है।

गोड़ हूवी टींवडो हूंदी । **(पाजामा)**

पाजामे की आकृति इस प्रकार की होती है कि आसन वाला भाग वृक्ष के भू-भाग वाले तने की भांति लगता है तथा दोनों टांगों वाला भाग वृक्ष की चोटी की भांति लगता है।

हों ता आउं तूं डूं तू किया आ । **(छाया)**

धूप में रास्ता तय करते समय मनुष्य की आकृति छाया के रूप में मनुष्य के साथ-साथ चलती है। पहेली में चलने वाला मनुष्य छाया से पूछ बैठता है कि मुझे तो जाना ही पड़ रहा है लेकिन मेरे पीछे-पीछे तुम कहां आ रही हो या मेरा पीछा कर रही हो।

पीठे कड़को पको जतण । **(नाखून)**

पहेली में प्रश्न किया गया है कि ऐसी कौन सी वस्तु है जो अपनी पीठ पर ढाल के तौर पर एक लकड़ी का तख्ती प्रयोग में लाता है। इसमें नाखून के नीचे वाले भाग को लकडी के तख्ते की उपमा दे रखी है।

पार ढोका दे मुगड़े हाला। (तौटा–तवा)

पहेली में तवे के रखने वा स्थान को ढंकार वाले गुफा की संज्ञा दी गई है तथा लटकते हुए तवे को मुंगड़ी। मुंगड़ी एक प्रकार का आभूषण है जो महिलाएं कानों में डालती है।

पार रूबाटड़ी शेवटा रो रूड़ो। (दांत)

उपरोक्त में मुख को गुफा की उपमा दे रखी है तथा मुख में दांतों की पंक्ति-समूह को शेऊट (चकमक पत्थर) का समूह।

निदेशालय,
उद्यान विभाग, हिमाचल प्रदेश
नौबहार, शिमला-२।

★●★

हिमाचल प्रदेश इतिहास

प्राचीन रियासत गुलेर के संस्थापक राजा हरिश्चन्द्र

—डा० श्रीकान्त 'प्रत्युष' गुलेरी

स्वतन्त्रता के पूर्व भारतवर्ष छोटी-छोटी रियासतों में बंटा पड़ा था। पहाड़ी रियासतों में गुलेर की ख्याति दूर-दूर तक फैली हुई थी। गुलेर का प्राचीन नाम गोपाचल भी उपलब्ध होता है। इस राज्य की स्थापना 'गुलेर राज्य पंजिका' और प्राचीन 'गुलेर नृप वंशावली' के अनुसार आज से लगभग सात सौ वर्ष पूर्व सम्वत १३०४ वि० में राजा हरिश्चन्द्र ने की थी। राजा हरिश्चन्द्र कांगड़ा (त्रिगर्त) के नरेश मेघचन्द्र के ज्येष्ठ पुत्र थे। मेघचन्द्र के बाद हरिश्चन्द्र राज्यासीन हुए। एक बार वह शिकार के लिए वन में निकले। उनका साथ उन्हीं के सिपाही दे रहे थे। वन में शिकार की टोह में घूमते-घूमते वे मार्ग भूल बैठे, पर उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा। वे अपनी धुन के पक्के थे। उन्हें कड़कती धूप में छाया तले आराम करते हुए एक मृग दिखाई पड़ा। मृग का पीछा करते हुए वे घास-फूस के ढंके गहरे कुएं में, जिसमें कोई जल अधिक नहीं था गिर पड़े। उनके साथी सिपाही लोग ढूंढ़-ढूंढ़ कर हार बैठे। वे वापिस कांगड़ा लौट गए और उन्होंने सारी दास्तां हरिश्चन्द्र के छोटे भाई कर्मचन्द के समक्ष रखी। नगर में शोक की लहर दौड़ गई। रानियां राज्य का भार कर्मचन्द को सौंप कर सती हो गई। सत्ताईस रोज़ तक हरिश्चन्द्र कुएं में पड़े रहे। एक दिन 'लबाना' जाति से धनी व्यापारी व्यापार के उद्देश्य से कांगड़ा जा रहे थे। भाग्यवश वे उसी जंगल से गुज़रे। उन्हें मार्ग में प्यास लग पड़ी। वे पानी की खोज में इसी कुएं पर पहुंचे जिसमें हरिश्चन्द्र अपने दिन गिन रहे थे। उन्होंने ज्योंहि बाल्टी कुएं में पानी के लिए उतारी उसे राजा हरिश्चन्द्र ने बड़े उद्योग से पकड़ लिया। उसी के सहारे कुएं से बाहिर निकलने पर 'लबानों' ने उनकी बहुत सेवा की। उनकी राजसी पौशाक देख कर उनका ग्राम धाम पूछा गया। राजा ने उन्हें बताया कि उनका देश कांगड़ा है और नाम राजा हरिश्चन्द्र। शिकार खेलते एक दिन इस कुएं में गिर पड़े थे। राजा ने लबानों को अपने साथ ही कांगड़ा चलने का आग्रह किया और यह भी कहा कांगड़ा पहुंचने पर उन्हें पुरस्कृत भी करेंगे।

कांगड़ा में हरिश्चन्द्र के लौटने की खबर सुन कर भाई कर्मचन्द और उनके प्रजा जन फूले न समाए। राजमहल के निकट कर्मचन्द प्रजा सहित हरिश्चन्द्र से गले लग कर मिला। हरिश्चन्द्र ने नगर और घर-बार की खबर पूछी। उन्हें पता चला उनके वियोग में रानियां सती हो गई हैं और राज्य-भार मियां कर्मचन्द को सौंप गई हैं। राजा हरिश्चन्द्र ने तत्काल यह निर्णय किया कि वे अब राज्य-भार नहीं सम्भालेंगे। भाई, भतीजा और प्रजा की उन्होंने एक नहीं सुनी। उन्होंने हरसर में आकर निवास किया। यहां आकर हरिश्चन्द्र ने ताल-तलैया, बावलियां तथा

कुएं खुदवाए। बाग-बगीचे, महल और किले का निर्माण करवाया। इस प्रकार इस स्थान का नाम उन्हीं के नाम से हरसर पड़ा है। चार वर्ष तक राजा हरिश्चन्द्र यहां रहे। कर्मचन्द ने पुनः हरसर आकर भाई से प्रार्थना की कि वे शादी कर लें ताकि वंश का नाम उज्जवल हो। उन्होंने किसी अच्छे कुल की कन्या से विवाह करने की सहमति दे दी। छब्बड़गढ़ के राणा के समक्ष जब उक्त प्रस्ताव उसकी दोहती के बारे में रखा गया तो वह नहीं माना। हरिश्चन्द्र ने क्रोध में आकर 'गारल' (वर्तमान गरली) राणा पर आक्रमण कर दिया। इस प्रकार उसे परास्त कर उसकी दोहती से उन्होंने विवाह किया। छब्बड़ से वापिस लौट कर राजा ने अब किसी रमणीक स्थान को बसाने की सोची। एक ग्वाले ने वहां आकर ठीक उसी समय खबर दी– महाराज ! मैंने बाण-गंगा के किनारे एक अचम्भा देखा है। बाघ-बकरी वहां इकट्ठे पानी पी रहे थे। राजा ने कहा मुझे वह स्थान दिखाया जाए। उस स्थान को देख कर राजा ने सोचा बसने के लिए और राज्य की स्थापना हेतु सबल भूमि उचित है जहां कोई किसी को जीत कर न जा सके और स्वयं जीत कर आ सकने में समर्थ हो। उन्होंने ग्वाले द्वारा दिखाए इस स्थान का नाम गुलेर रियासत (गोपाचल) रखा। दुःख की बात है यहां ग्वाले की बलि देकर किले की नींव पत्थर रखी गई। शुभ घड़ी, मुहूर्त्त देख कर राजा ने हरिपुर नगर बसाया। मन्दिर, महल, तालाब बनवाए और बाग-बगीचे लगवाए। सब वर्णों के लोग यहां बसे। नगरी सुन्दरता में मथुरा, प्रयाग, बनारस से कम न थी। उक्त कथा गुलेर के राजकवि उत्तम द्वारा रचित अढ़ाई सौ वर्ष पुराने ऐतिहासिक हस्तलिखित दुर्लभ काव्य 'दिलीप रजनी' के छटे उल्लास में सविस्तार दी गई है।

आगे चल कर दिलीपसिंह, गोवर्द्धनचन्द्र, जयसिंह, रघुनाथसिंह और बलदेवसिंह जैसे कला-प्रेमी तथा काव्य-पोषक राजा हुए हैं। गुलेर चित्रशैली की नींव जो सत्तरहवीं शताब्दीमें दिलीप नरेश ने रखी थी उसका चरम विकास गोवर्द्धनचन्द के समय में हुआ। उपर्युक्त चर्चित राजाओं के राजाश्रय में सर्वश्री उत्तम, रुद्र, कदारु, राम, मान, सुखदेव तथा वृजराज प्रभृति कवियों की दुर्लभ रचनाओं का प्रणयन हुआ जो हस्तलिखित रूप में गुलेर राजवंश, राजपुरोहित तथा कवियों के वंशजों के पास पूर्णतया सुरक्षित हैं। अतएव चित्रकला की भान्ति ही हिन्दी कविता में भी गुलेर का अभूतपूर्व योगदान है।

कीर्ति भवन, गुलेर
जिला कांगड़ा, हिमाचल प्रदेश।

हिमाचल के किले-रोमांच और इतिहास

प्रो० चन्द्र वर्कर

किले हिमाचल के इतिहास का धुरा रहा है। यहां पचास से ऊपर पहचान योग्य रियासतें और सैंकड़ों रणहूं और ठाकुराईयां रही हैं। हर राजा, राणा और ठाकुर ने अपने-अपने अधिकार क्षेत्र की सुरक्षा के लिए किले बनाए। किले राज परिवार की रक्षा के लिए तथा लोगों को हमसायों के आक्रमणों और छापों से बचाने के लिए बनाए गए कहते हैं, मण्डी राज्य में एक समय तीन सौ साठ किले थे और कुल्लू में चालीस।

यह पहाड़ी टीलों पर, धारों पर बने, नदियों के किनारों पर, दो नदियों के संगम स्थल से घिरे हुए ऊंचे स्थानों पर, राजधानियों में तथा व्यापार के और आने-जाने के रास्तों और दुर्जन स्थानों पर, घाटों, नाकों, दर्रों को कमांड करने के लिए बने थे।

जब-जब राज पलटते गए, राजनैतिक कारणों से पुराने किले गिराए गए और नये बनाए जाते गए। आखिर सन् १८४६ में जब अंग्रेजों का इस इलाके पर अधिकार हो गया तो उन्होंने कांगड़ा, नूरपुर, कोटला, कमलाह और बजौरा के किलों के इलावा बाकि सब किले गिरवा दिए, ताकि न रहे बांस न बजे बांसुरी, न रहे किले न पनप सकें विद्रहों के अड्डे। कुछ किलों में थाने कायम कर दिए गए और कुछ में सरकारी कार्यालय स्थापित कर दिए गए। बजौरा के किले को सराय बना दिया गया और नग्गर के किले को कुल्लू के असिस्टैन्ट कमिश्नर का कार्यलिय। कमलाह का किला मण्डी के राजा की प्रार्थना पर कि वहां उसके मन्दिर हैं, उसके पास रहने दिया गया। कांगड़ा, कोटला और नूरपूर के किलों में अंग्रेजी सेना रख दी गई।

१९०५ में भूचाल ने उस कांगड़ा के किले को जिसको तोड़ कर कोई अन्दर न घुस सका पांच-दस सैकिंडों में तोड़-फोड़ कर खण्डहर बना दिया। नूरपुर और कोटला के किले भी न रहे।

इन किलो ने महमूद गज़नवी द्वारा अपनी दौलत को लूटे जाते देखा, अकबर की फौजों के घेरों को सहा, जहांगीर और शाहजहां की विजय पताकाओं को अपने परकोटों पर फहराते देखा, अकबर की शादी देखी। बीरसिंह पठानियां की मौत तथा भक्ति थापा की वीरगति देखी।

हाथियों द्वारा खैंच कर लाई गई तोपों की बौछारों से अपने आपको छलनी होते देखा। इनके अन्दर चितेरों ने पहाड़ी चित्रकला को सींचा। इनमें पत्थर से पत्थर टकराया और तलवार से तलवार खनकी।

यह घड़े और अनघड़े पत्थरों से, पत्थर और मिट्टी तथा पत्थर और लकड़ी की एकान्तर परतों और ईंट तथा सुरखी चूना से बने।

मध्य हिमाचल में किले स्थानीय मकानों के ढंग पर बनाए जाते, इनकी दीवारें और बुर्ज लकड़ी और पत्थर की एक दूसरे से ऊपर बारी-बारी रखी गई परतों, तहों की होती हैं। इनके बुर्ज आपस में दीवारों से जुड़े होते, बुर्ज साधारणतया तीन मंजिले होते। इन सब के लिए प्रवेश दूसरी मंजिल से था जोकि एक लकड़ी की सीढ़ी द्वारा होता था। ऊपर की मंजिल में चारों ओर आगे को बढ़ी हुई छत वाली बालकनी होती थी, इस पर से किले की रक्षा करने वाले, दीवारों के निचले सिरों पर भी पूरी नजर रख सकते थे। दीवारो में उपयुक्त अन्तरों पर छिद्र बनाए होते थे। मण्डी में टंग के किले में सात बुर्ज, बाघी थाच में अठारह, कुल्लू में बेरकोट में सोलह, बजौरा में सात और राघोपुर में नौ थे। मुआसिर उलउमरा के अनुसार कांगड़ा के किले में तेईस बुर्ज और सात दरवाजे थे। किलों को मजबूती और अजेयता देने के लिए इनके नींव पत्थरों के नीचे ताजा बहते खून वाले कटे सिर या जीवित व्यक्ति दबा दिए जाते थे। गुलेर के राजा हरिचन्द को एक ग्वाले ने किला बनाने के लिए उपयुक्त स्थान बताया। किले के नींव पत्थर के नीचे उसी ग्वाले को जिन्दा दफना दिया गया। राज्य का नाम उसी ग्वाले की याद में गुलेर रखा गया। इसी प्रकार नूरपुर के राजा जगतसिंह ने चम्बा की सीमा के अन्दर तारागढ़ के किले की नींव के नीचे तारा नामक ज़िमीदार को जिन्दा दबा दिया और इसके नाम पर किले का नाम तारागढ़ रखा।

गोरखों द्वारा निर्मित किले अपना विशेष महत्व रखते हैं। सन् १८०६ से १८१० की अवधि में गोरखों ने यमुना और सतलुज के दरम्यान की पहाड़ी रियासतों पर अपना अधिकार जमा लिया। उनके नेता अमरसिंह थापा ने अर्की में अपना मुख्यालय कायम किया, नाहन में अपने लड़के रंजोरसिंह को और केन्द्रीय तथा उत्तरी इलाकों में कीर्ति राणा को बिठाया। अर्की के दक्षिण में पहाड़ियों की तीन धारें हैं—नालागढ़, रामगढ़ और मलौण। गोरखों ने नालागढ़ धार में नालागढ़ और तारागढ़ के किलों को मजबूत किया। रामगढ़ और मलौण धारों पर किलों का एक तांता बांध दिया। यह थे रामगढ़, सूरजगढ़, चम्बा, तारागढ़, रत्नगढ़, मस्तगढ़, और जुरजुरे, राजगढ़ यानि मलौण इत्यादि।

नाहन के पास जैतक का किला बनाया। ऊपर के इलाकों में नालागढ़, राईगढ़, चौपाल, बाहिली बनाए। बुशहर में रामपुर के पार शिकारी, उढ़ा और बम्पटा। एक किला सराहन के पास बनाया।

गोरखों के किले प्रभावशाली स्थानों पर बने होते थे। उनकी मुख्य कठिनाई किले के अन्दर पानी का स्थाई स्रोत न होना था, जब एक बार पानी और रसद की सप्लाई काट दी जाती, उनके किलों का समर्पण केवल दिनों की बात ही रह जाती। वे बन्दूकों का हमला तो झेल सकते थे पर तोप के सामने नहीं टिक सकते थे।

गोरखा किले की विशेष कारीगरी उसका सटौकेड यानि लकड़ी मिट्टी का अड्डा होती थी। पहले किसी ऊंची पहाड़ी पर बचाव के लिए सब से आसान और आक्रमण के लिए सब से कठिन स्थान तलाश कर लिया जाता। फिर स्थानीय उपलब्ध वृक्षों को काट कर लम्बे-लम्बे खम्भे बना लिए और इनको दो नजदीकी समानान्तर कतारों में साथ-साथ गाड़ दिया जाता। इन कतारों के दरम्यान की जगह को पत्थर, मिट्टी, वृक्षों की डालियों इत्यादि से भर दिया जाता। यह बनावट आक्रमणकारी के लिए बहुत कठिनाई उत्पन्न कर देती थी। १८१४-१५ के अंग्रेज़-गोरखा युद्ध में गोरखों ने अंग्रेज़ी सेना को इनके कारण बहुत मार दी। हर किले के आगे इन स्टौकेडज़ को बना कर उस किले की मजबूती को कई गुणा बढ़ा देते थे।

चूंकि पहाड़ी किले ऊंची चोटियों पर होते थे, इसलिए बहुत कम के अन्दर झरने, स्रोत और बाओलियां होती थीं। बारिश का पानी इकट्ठा करने के लिए उनके अन्दर हौज़, तालाब और कुएं बनाये जाते, निकटवर्ती नदी, नालों और बाओलियों से पानी भरा जाता। देवदार के वृक्षों को खोखला करके उनमें पानी रखा जाता। सिरीगढ़ में लकड़ी के अन्दर लगे पानी रखने के कुन्ड थे। नवागढ़ और हातू में बर्फ को दबा कर रखा जाता, ताकि वह आहिस्ता-आहिस्ता पिघले और गर्मियों में भी पीने का पानी मिलता रहे। राईगढ़ में एक मास तक का पानी कुन्डों में रखा जा सकता था।

कई किले बहुत ऊंचाइयों पर स्थित थे। कुल्लू में सिरीगढ़ ८४०० फुट पर, बौरकोट ८६०० फुट पर और राघोपुर ११००० फुट पर, सुकेत में चुआसी १०७०० फुट पर, कांगड़ा में चन्द्रभान ९००० फुट पर, नारकन्डा के पास हातु १०६७३ फुट पर, किन्नौर में श्यालखर ११९०० फुट पर और स्पिति में डंखर १३००० फुट पर थे।

नालागढ़ में मलौण का किला इसलिए महत्वपूर्ण था कि वहां १५ मई १८१५ को गोरखा जरनैल अमरसिंह थापा ने अंग्रेज़ जरनैल औक्टरलोनी के सामने हथियार डाल दिए और इससे हिमाचल में अंग्रेज़ी राज शुरू हुआ। वह मजबूत किला पत्थर का बना हुआ था। १०० गज़ लम्बा और २० गज़ चौड़ा था। इसी लड़ाई में जैतक के किले में गोरखों ने अंग्रेज़ी सेना को २७ दिसम्बर १८१४ को इतनी करारी हार दी कि मलौण के पतन तक अंग्रेज़ जरनैल मारटिण्डल इस पर फिर हमला करने का हौसला न कर सका।

नूरपुर के पास शेरशाह सूरी के लड़के इस्लामशाह सूरी ने सन् १५४० में माउकोट का किला बनाया। सन् १५५७ में मुगल फौजों से मार खाए हुए सिकन्दरशाह सूरी ने यहां शरण ली। अकबर ने इसका मुहासिरा किया जो छः महीने चलता रहा। इसके बाद नूरपुर के राजाओं, बासू, सूरजमल और जगतसिंह ने जब-जब विद्रोह किए, इस किले को ही उन्होंने अपना मुख्य अड्डा बनाया। जगतसिंह की हार के बाद शाहजहां ने माउकोट को पूर्णतया नष्ट करा दिया। इस किले के बारे में कहा जाता था :–

"माउ की मुहिम यारो, मौत की निशानी है"

मण्डी में कमलाह के किले भी बड़े मजबूत माने जाते थे। इस समूह में दस किले थे जिनमें कमलाहगढ़ और अनन्तपुर मुख्य थे। कहते हैं कि जब मण्डी के राजा ने स्थानीय ठाकुरों से कमलाहगढ़ को जीता, तो ठाकुरों ने राजा को इस किले को इस शर्त पर देने को माना कि वह किले में साल में केवल एक बार ही आया करेगा और तब भी उसे किले के अन्दर आने वाले रास्तों पर से गुज़रते समय आंखों पर पट्टी बांध रखनी होगी। महाराजा रणजीतसिंह को भी इस किले के अन्दर आने की इजाजत नहीं दी गई क्योंकि उसने इन शर्तों को न माना।

हर पुराने किले के बारे लोगों की धारणा है कि वहां धन दबा पड़ा है और जब भी वहां खुदाई की गई तो वहां नाग मिला, जो उस धन का रक्षक है, और किलों में जो कुएं और तालाब हैं उनमें हथियार, सिक्के, अनाज और घी दबे पड़े हैं। रात को इन वीरान कुओं से आवाजें आती हैं कभी उनमें रस्सी द्वारा लटकाए गए घड़े में पानी के भरने की, कभी भरे हुए घड़े में से छलकते हुए पानी के गिरने की, कभी इनके अन्दर रह रही मृत आत्माओं के हंसने, रोने, गाने और चीखने की, कभी लड़ाई के कोलाहल की।

कुल्लू में नग्गर के किले के अहाते में एक पत्थर की स्त्री की मूर्ति के बारे प्रचलित है कि वह उस रानी की है जिसके बारे में राजा को यह शक हो गया कि वह किले के अन्दर अपना कोई प्रेमी छुपाए हुए है। रानी ने अपनी निर्दोषता प्रमाणित करने के लिए किले के छज्जे से छलांग लगा दी और जमीन पर गिरते ही वह इस पत्थर की मूर्ति में बदल गई। इस कहानी का दूसरा रूपान्तर है कि किले के आंगन में कुश्तियां हो रही थीं। राजा ने रानी से पूछा कि उस समारोह में उसे सबसे सुन्दर व्यक्ति कौन लगता है। राजा ने सोचा था कि रानी उसका ही नाम लेगी, परन्तु रानी ने एक पहलवान की ओर इशारा कर दिया। इस पर आगबबूला होकर राजा ने उस पहलवान को उसी समय कतल करा दिया। रानी को इससे इतना धक्का लगा कि उसने छज्जे से छलांग लगा दी।

आज से लगभग कोई चालीस साल पहले जब प्रिंस पीटर आफ ग्रीस इस किले में ठहरे तो उन्होंने रैस्ट-हाऊस में ठहरने वालों के रजिस्टर में लिखा—ओह, यहां तो भूत ही भूत रहते हैं।

दूर-दूर से दिखाई देने वाले और अपने निकट के क्षेत्र पर प्रभुत्व जमाए, पहाड़ों की चोटियों पर खड़े किलों के खण्डहर, आज भी पहाड़ी राजाओं, राणाओं और ठाकुरों के रूमानों और उनकी हार जीतों की गाथा कहते हैं और अपने अतीत के गौरव की यादें दिलाते हैं—वह यादें जो बहुत लम्बी हैं।

हिन्दी के द्वितीय प्रेमाख्यान
दाऊद रचित 'चान्दायन' के आधार स्रोत

—डॉ० सुशील कुमार फुल्ल

विश्व के प्रेमाख्यानों की सुविकसित एवं सुदीर्घ परम्परा मिलती है। नवीनतम शोव के आधार पर यह सिद्ध हो चुका है कि विश्व भर में व्याप्त इस परम्परा का उद्भव-स्थल भारत है, यूनान अथवा अन्य कोई देश नहीं।[1] ग्रीक इतिहासकार हेरोदोतस तथा हिकोतियस (ई० पूर्व ५ वीं-६वीं शताब्दी) आदि लेखकों की रचनाओं में ऐसे स्पष्ट प्रमाण मिलते हैं, जिनसे नीति कथा एवं प्रेमाख्यानों के क्षेत्र में भारत के महत्वपूर्ण योगदान का पता चलता है। वास्तव में भारतीय काम-कथाएं ही कालान्तर में अपने किंचित परिवर्तन एवं परिष्कृत रूप में प्रेमाख्यानों के रूप में प्रस्फुटित हुई है।[2]

हिन्दी में भी प्रेमाख्यानों की सुनिश्चित परम्परा मिलती है, जो चौदहवीं शताब्दी से उन्नीसवीं तक निरन्तर प्रवहमान रही। असाइत रचित 'हंसावली' हिन्दी का प्रथम प्रेमाख्यान है।[3] जिसकी रचना सन् १३७० ई० में हुई।[4] इसके नौ वर्ष पश्चात् अर्थात् १३७० ई० में दाउद ने 'चान्दायन' की रचना की, जिस में चान्दा एवं लोरिक की प्रेम-कथा है। अतः कालक्रम एवं विकास-क्रम की दृष्टि से 'चान्दायन' का महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रायः यह कहा जाता है कि हिन्दी में प्रेमाख्यान परम्परा का उद्भव एवं विकास फारसी मसनवियों के अनुकरण के फलस्वरूप हुआ परन्तु हिन्दी प्रेमाख्यानों के अध्ययन एवं विशलेषण से पता चलता है कि इनमें ऐसा कोई प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष प्रभाव नहीं मिलता जिस के आधार पर

---

1. राजस्थान-भारती, भाग १७, अंक १, (जनवरी-मार्च) १९७५, लेख : 'विश्व-प्रेमाख्यानः परम्परा व आदि स्त्रोत' —डॉ० सुशीलकुमार फुल्ल, पृष्ठ १८।
2. 'कादम्बिनी' मासिक, वर्ष १५, अंक ४, फरवरी १९७५, पृष्ठ ११९, लेख : बोकेशिया शुक-सप्तति की कथाओं से परिचित था।
3. हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास (१९६५) —डॉ० गणपतिचन्द्र गुप्त, पृष्ठ ५४५।
4. देखिए पंजाब विश्वविद्यालय की पी-एच० डी० के उपाधि लिए (मार्च १९७४) स्वीकृत 'जायसी (पद्मावत) पूर्व रचित हिन्दी प्रेमाख्यानों के आधार पर हिन्दी प्रेमाख्यान—परम्परा के उद्गम-स्रोत, स्वरूप एवं प्रवृत्तियों का विवेचन' शीर्षक शोध-प्रबन्ध का तृतीय खण्ड, डॉ०सुशीलकुमार फुल्ल.

दिखाया जा सकता है। जैसे 'सात बुद्धिमान वजीरों की कथा' भारतीय है जिसका कथानक ग्रीक प्रेमाख्यान 'सिनटिपस' में प्रयुक्त हुआ है। अतः इसे निश्चित रूप से ग्रीक प्रेमाख्यानों पर भारतीय प्रभाव का उदाहरण माना जा सकता है। अस्तु 'चान्दायन' एवं अन्य प्रेमाख्यानों के आधार स्रोतों के अनुसन्धान एवं विशलेषण से इस दिशा में महत्वपूर्ण सहायता मिलेगी, ऐसा निश्चित रूप से कहा जा सकता हैं। ऐसा करने से हिन्दी प्रेमाख्यानों के सम्बन्ध में प्रचलित भ्रान्तियों का खण्डन हो सकेगा तथा परम्परा को सही परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकेगा।

दाऊद का चान्दायन उत्तरी भारत के एक विस्तृत भू-भाग में प्रचलित 'लोरिकायन'[1] सम्बन्धी लोक-कथा पर आधारित है। लोरिक सम्बन्धी अत्यधिक समानता वाले लोक-गीतों का का प्रचलन उत्तर प्रदेश, गुजरात, मध्य प्रदेश, हैदराबाद, राजस्थान, बिहार तथा बङ्गाल तक में पाया जाता है। सन् १३२६ ई० में रचित मैथिल कवि ज्योतिरीश्वर शेखराचार्य की कृति 'वर्णरत्नाकर' में लोरिक नाच्यो का उल्लेख मिलता है,[2] जिस से उक्त नायक के लोक-चरित की ख्याति का पता चलता है।

मध्ययुगी कवियों के लिए भी यह कथा आकर्षण का केन्द्र रही है। इसी के आधार पर अवधी में दाऊद ने 'चान्दायन', साधन ने 'मैनासत', दक्खिनी हिन्दी में गवासी ने 'चन्दा और लोरिक' तथा बङ्गाल में दौलत काजी[3] एवं अला ओल कृत 'सती मयना ओ लोर चन्द्रानी' आदि रचनाएं मिलती हैं।

डॉ० नित्यानन्द तिवारी ने अपने शोध-प्रबन्ध 'मध्ययुगीन रोमांचक आख्यान[4] में लोरिकायन-पवारे के निम्नलिखित रूपों का परिचय दिया है[5]:—

१· गाजीपुर का भोजपुरी रूप।
२. इलाहाबाद का अवधी रूप।

---

1. हिन्दी साहित्य का बृहत इतिहास (सं० २०१७), राहुल सांकृत्यायन, पृष्ठ १०० पर 'लोरकी' अथवा लोरिकायन (भोजपुरी) गाथा का परिचय दिया हुआ है। इसके अनुसार लोरिक सम्भवतः कोई स्थानीय वीर रहा होगा।
2. हिन्दी के सूफी प्रेमाख्यान (१९६२), परशुराम चतुर्वेदी, पृष्ट ४१।
3. परिचय के लिए देखिए : (A) Bengali Literature (1948), J.C. Ghose, p. 84–85.
   (B) History of Bengali Literature (1960), Dr. Sukumar Sen, p. 150–151.
   (C) बंगला साहित्य का संक्षिप्त इतिहास (१९६८), डॉ० सत्येन्द्र, पृष्ठ १५५।
4. मध्य युगीन रोमांचिक आख्यान (१९७०), डॉ० नित्यानन्द तिवारी, पृष्ठ ३७–६६।
5. चन्दायन (१९६४), सं० डॉ० परमेश्वरीलाल गुप्त, पृष्ठ ३५२–४२२ इसमें भोजपुरी प्रदेश, मिर्जापुर, भागलपुर, मिथिला, छत्तीसगढ़ तथा सन्थाल परगनों में प्रचलित लोक-कथाओं का संकलन है।

३. आरा का प्रकाशित भोजपुरी रूप।
४. वैरियर एलविन का छत्तीसगढ़ी रूप।
५. काव्योपाध्याय का छत्तीसगढ़ी रूप।
६. शाहाबाद का रूप।
७. विलियम क्रूक का मिर्जापुरी रूप।
८. एस०सी० दुबे का छत्तीस गढ़ी रूप।
९. ग्रियर्सन द्वारा एकत्रित लोरिक-जन्म की कथा के दो मगही रूप।
१०. शरद चन्द्र मित्र का बिहारी रूप।

'लोरिक' लोक-कथा भोज-पुरी एवं अवधि रूपों में पूर्ण रूप से मिलती है। अतः आधारभूत-कथा के लिए मुख्यतः इन्हीं दो रूपों से 'चान्दायन' की कथा तुलना आपेक्षित है। इसका यह अभिप्रायः है कि दाऊद ने इन्हीं रूपों से सारी सामग्री ग्रहण की होगी। सम्भव है अन्य लोक प्रचलित रूपों से भी दाऊद का परिचय रहा हो परन्तु यहां भोजपुरी एवं अवधि की कथाओं से तुलना का मुख्य कारण उन की अपेक्षा-कृत पूर्णता ही है।

चान्दायन तथा लोरिकायन का भोजपुरी रूप :

'चान्दायन' का आरम्भ सृष्टि, कर्ता, हजरत मुहम्मद तथा उनके चार यारों की स्तुति से होता है। तदन्तर समकालीन शासक तथा गुरूप्रंशंसा का उल्लेख है। दाऊद ने रचना-काल का उल्लेख भी किया है।

भोजपुरी लोक-कथा में भी कथारम्भ 'सुमरिन' से होता है, जो 'चान्दायन' के ढंग से भिन्न प्रकार का है। 'चान्दायन' का कवि मुसलमान था, अतः वन्दना खण्ड में उसने अपने व्यक्तिगत धार्मिक-विश्वासों के अनुकूल ईश-स्मरण किया है।

'चान्दायन' की कथा का आरम्भ चांदा के जन्म, विवाह एवं उसके मायके लौटने से होता है, जिसमें लोरिक के शौर्य में, युद्ध-पराक्रम आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। लोक-कथा रस में अनेक चमत्कारिक घटनाओं की संयोजना मिलती है। मनियार विस्तार से सती मदैनी की लोरिक एवं संवरू के जन्म की कथा बताता है। संवरू विवाह प्रसंग में ही लोरिक के अपने साथियों सहित कुसुमापुर पहुंचने पर महल से ही चनवा लोरिक पर रंग डाल देती है। चनवा ने पुनः रंग डाला इसके बाद लोरिक भी उस पर रंग डालता है। चनवा बहोश हो जाती है। चेतना लौटने पर चनवा उसे ताना देती है लोरिक अपने भाई संवरू का विवाह करने की सोचता है। भगवती दुर्गा की अराधना करता है। लोरिक के युद्ध में विजयी होने पर संवरू का विवाह सती मदैनी से होता है।

लोरिक विवाह :

'चान्दायन' में लोरिक तथा मैना के विवाह का वर्णन नहीं है। वह अपनी मां खोलिन के साथ रहता है तथा मैना उसकी विवाहिता है।

भोजपुरी लोक-कथा में लोरिक तथा मंजरी के विवाह का विस्तृत वर्णन मिलता है। भटराया मंजरी को हथियाने का प्रयत्न करता है परन्तु लोरिक सभी को परास्त करता है।

लोरिक चांदा प्रेम :

चान्दायन में लोरिक राव रूप चन्द को युद्ध में परास्त कर गोवर के सहर सहदेव के मान की रक्षा करता है। महल से चांदा उसे देखती है तथा उस पर मुग्ध हो जाती है। भोज का आयोजन होता है। पुनः मिलन होता है। बृहस्पति सहायिका बनती है। बहरे की सहायता से लोरिक चांदा के महल पर चढ़ कर उससे सुख-विलास करता है। चांदा ही लोरिक को भगा ले जाने के लिए उकसाती है। वह कोई न कोई बहाना बनाता है परन्तु चांदा नहीं मानती। लोरिक उसे लेकर चल देता है। भोजपुरी कथा में लोरिक विवाह के कुछ पश्चात ही गौरा लौट रहे गोबर का हाथ पकड़ चनवा कहती है - हे अहीर! मुझे साथ लेकर पूर्व देश की ओर निकल चलो। लोरिक कातिक-मास तक प्रतीक्षा करने को कहता है। परन्तु चनवा धन का प्रबन्ध करके तुरन्त चलने के लिए विवश कर देती है।

इस प्रकार 'चान्दायन' एवं भोजपुरी रूप में क्रमशः चान्दा एवं चनवा ही नायक को भगा ले जाने का प्रयत्न करती दृष्टिगोचर होती है। दोनों रचनाओं में लोरिक की पत्नी (चान्दायन में मैंना एवं भोजपुरी में मंजरी) को उस के प्रेम का पता चलता है। परन्तु प्रयत्न करने पर भी वे उसे रोक नहीं पाती।

'चान्दायन' एवं लोक-कथा रूप में समान रूप से भाई से भेंट होती है। 'चान्दायन' में कुंवरू से भेंट होती है परन्तु भर्त्सना नान्द चरवाहा करता है।

चांदा पति प्रसंग :

चांदा के भाग निकलने पर उसका पति बावन दोनों का पीछा करता है। बावन के तीनों बाण व्यर्थ जाते हैं। वह चांदा को लौट आने के लिए कहता है। परन्तु सफल न होने पर शाप देता है कि लोरिक यमपुर का राज करेगा तथा चांदा को सांप डसेगा।

भोजपुरी रूप में चनवा के पति का नाम बावन नहीं है अपितु सिवधर है। हां बावन की भांति वह भी काना है। सिवधर भी चनवा एवं लोरिक का पीछा करता है। लोरिक और चनवा मन्दिर में छिपे थे। सिवधर शिव प्रार्थना द्वारा उन को मन्दिर से बाहिर निकलवाता है। लोरिक सिवधर से उसकी पत्नी को ले जाने के लिए कहता है परन्तु चनवा को यह स्वीकार नहीं। वह प्रस्ताव रखती है कि दोनों युद्ध करें जो जीतेगा उसी के साथ जाएगी। लड़ाई में चनवा सिवधर की टांग खींच देता है। सिवधर परास्त हो जाता है, सिवधर तब लोरिक से कहता है—हम तो जानते थे कि मर्द ही औरत को भगा ले जा रहा है लेकिन यहां तो मर्द को ही औरत भगा ले जा रही है।[1]

1. मध्य युगीय रोमांचक आख्यान (१९७०) पृष्ठ ४४।

सर्पदंश-प्रसंग :

सर्पदंश-प्रसंग की योजना दोनों में मिलती है। चांदा के सांप द्वारा डसे जाने पर लोरिक चिता बना कर स्वयं भी उसके साथ जल मरने के लिए तैयार है। एक गुणी आकर चांदा को पुनर्जीवित करता है। चांदा-सूर्य दंश का प्रसंग चान्दायन में दोबारा आया है।

भोजपुरी रूप में भी चनवा को सांप द्वारा डसे जाने पर लोरिक चिता बनाता है। शिवजी को चिन्ता होती है। वह ब्राह्मण-वेश धारण कर उससे कारण पूछते हैं तथा हरदोइया से चनवा का विष उतरवा देते हैं।

हारदी-पाटन निवास खण्ड :

'चान्दायन' में लोरिक एवं चांदा को हरदी-पाटन के राजा छेतम का आतिथ्य प्राप्त होता है। लोरिक वहां एक वर्ष से कुछ अधिक रहता है।

भोजपुरी लोक-कथा में लोरिक के प्रति जमुनी की आसक्ति एवं सहवास का प्रसंग भी वर्णित मिलता है। अनेक युद्धों में विजयी हो लोरिक चनवा एवं जमुनी के साथ रहता है। चनवा से उसे 'चनराजित' नाम का पुत्र भी उत्पन्न होता है। लोरिक १२ वर्ष तक 'हरदी' का राज करता है।

मैना (मंजरी) का सन्देश प्रसंग :

गोबर से एक टांडा हरदीं पाटन जा रहा था। मैना एवं खोलिन के लिए यह उपयुक्त अवसर था। मैना टांडे के नायक सुरजन द्वारा अपना सन्देश भेजती है। इसी प्रसंग में बारहमासे की योजना हुई है।

इसी प्रकार 'मंजरी' भी सभानायक नामक बनजारे के माध्यम से एक पाती अपने पति के पास भेजती है। जमुनी लोरिक तक पाती नहीं पहुंचने देती। अन्त में मंजरी के बताए उपाए के अनुसार सभानायक पाती देने में सफल होता है। लोरिक दुर्गा का ध्यान करता है, जो उसे पिपरी में जा युद्ध कर अपनी सम्पत्ति वापिस लेने की प्रेरणा देती है।

सन्देश पाते ही नायक लौटने के लिए आतुर हो उठता है। चांदा लोरिक को रोकना चाहती है परन्तु वह नहीं रुकता। उधर जमुनी व्यवधान बनती है। जादू के प्रभाव से फिर लोरिक के घोड़े को पीछे खींच लाती है। किसी प्रकार उससे छुटकारा पा लोरिक चनवा को ले वापिस आता है। लोरिक-चनवा बोहा में पड़ाव डालते हैं। चान्दायन का लोरिक भी चान्दा के साथ गोबर के बाहर देवहां में रुकता है।

सतीत्व परीक्षा :

दोनों में मंजरी-मैना के सतीत्व की परीक्षा की योजना मिलती है। दोनों दूध बेचने जाती है। दोनों की ही अपयश की खबर फैलती है परन्तु अन्त में उनके पति-व्रत होने का विश्वास हो जाता है।

भोजपुरी लोक-कथा में मंजरी के चरित्र भ्रष्ट होने का समाचार सुन खोलिन उसकी कई प्रकार से परीक्षा लेती है। कभी कच्चे घड़े में पानी भरवाती है, कभी सूई के छेद में से उसे निकलने को कहती है। अपनी बहन अनुपी की सहायता से मंजरी अपने पति को पाती है। चनवा अपना पुत्र दे भाग जाती है। चान्दायन में चान्दा इस प्रकार भागती नहीं। चान्दा, मैना में थोड़ा झगड़ा अवश्य चित्रित मिलता है। 'चान्दायन' में लोरिक के घर लौटने से पहले अजई और उसमें थोड़ा युद्ध भी होता है। अजई उसे पहचान जाता है। लोरिक घर लौटता है।

कथा का अन्त :

घर लौटने पर खोलिन को अपने दुःख सुनाती है। लोरिक की अनुपस्थिति में बावन मैना और बँना को लिए जा रहा था। अजई ने सहायता की थी छुड़ाने में। फिर महर के कहने से मांकर गायों को लिए जा रहा था। कंवरु उससे लड़ता मारा गया। लोरिक के दुःख की कोई सीमा न थी।

भोजपुरी रूप में लोरिक को पता चलता है कि उसका सारा धन पिपरी में चला गया है। लोरिक दुर्गा का स्मरण करता है। जो उसे तेगा उठाने को कहती है। पिपरी के लोगों को वह गाजर-मूली की भान्ति काट गिराता है। औरतों और बच्चों पर भी उसका हाथ उठता है। इस पाप से उसकी शक्ति क्षीण हो जाती है। मरनं-कंडिका घाट पर जा कर वह प्राण त्याग देता है।

'चान्दायन' का अन्तिम अंश अनुपलब्ध है। अतः विभिन्न लोक-कथा रूपों के आधार पर इसके सुखान्त अथवा दुखान्त होने का अनुमान मात्र ही किया जा सकता है।

इलाहाबाद का अवधी रूप[1] :

'लोरिकायन' के अवधी की कथा भोजपुरी से मिलती जुलती है। घटनाओं में किंचित हेर-फेर या आगे-पीछे करने की प्रवृत्ति अवश्य मिलती है। भोजपुरी रूप में संवरु का विवाह पहले तथा लोरिक का बाद में। अवधी रूप में लोरिक का पहले, संवरु का बाद में।

उल्लेखनीय है कि अवधी रूप में केवट-प्रसंग की योजना 'चान्दायन' की ही भान्ति मिलती है। अन्तर केवल इतना ही है कि इसमें चार मल्लाह बताए गए हैं जब कि चान्दायन में एक दी मल्लाह का वर्णन है। 'चान्दायन' में एक ही मल्लाह का वर्णन है। 'चान्दायन' में चांदा और लोरिक को नाव में जाते हुए देख कर भी कुछ कर पाने में मल्लाह असमर्थ है। ऐसा ही चित्रण यहां है परन्तु अभी प्रेमी-प्रेमिका नाव में ही है कि चनैती का पति आ पहुंचता है तथा नाव पर तीर चला कर उसके दो टुकड़े करता है। लोरिक चान्दा का साफा पकड़ा नदी पार कर जाता है।

---

1. मध्ययुगीन रोमांचिक आख्यान (१९७०), डॉ० नित्यानन्द तिवाड़ी, पृष्ठ ४८ के आधार पर।

लोक-कथा के अवधी रूप में 'चान्दायन' से मिलता जुलता प्रसंग बहरे द्वारा लोरिक का चनैती के महल में चढ़ना मिलता है। लोरिक तथा चनैती रति-क्रीड़ा में व्यस्त रहते हैं। चांदा की भाभी लोरिक को देख लेती है तथा सास को कहती है। चनैती बिल्लियों के आने का बहाना आदि बनाती है। इस प्रकार 'चान्दायन' का प्रसंग अवधी रूप से लिया जान पड़ता है।

भोजपुरी एवं अवधी के लोक-कथा रूपों में आश्चर्य तत्वों की भरमार मिलती है। 'चान्दायन' में भी किसी सीमा तक आश्चर्य तत्वों का प्रयोग मिलता है।

निष्कर्ष :

लोक-कथा के भोजपुरी एवं अवधी रूपों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि 'चान्दायन' की कथा का मूलाधार 'लोरिकायन' का ही कोई न कोई रूप रहता है। चान्दायन की कथा फारसी की कथा नहीं है, जैसा कि कतिपय विद्वानों में मान लिया था।[1] दाऊद ने लोक-कथा को आधार बनाकर अपने काव्य की रचना की, जिसके लिए अनेक प्रसंगों एवं स्थलों को उसने पूर्ववर्ती भारतीय साहित्य से ग्रहण किया। सर्पदंश प्रसंग महाभारत के आख्यान में भी मिलता है तथा अपभ्रंश साहित्य में भी। इसी प्रकार रूप वर्णन एवं बाहर मासे की योजना भारतीय साहित्य से ग्रहण की गई है। 'चान्दायन' में दाऊद की कतिपय मौलिकताएं भी मिलती हैं, यथा वस्तु-वर्णन के लिए दाऊद ने किसी लोक-कथा रूप का आधार नहीं लिया है तथा चान्दा के रूप सौंदर्य को देख कर बाजुर से मूछित होने का प्रसंग कवि की मौलिकता का परिचायक है। अतः यह निस्संकोच कहा जा सकता है कि चांदायन में भारतीय कथा-वस्तु, भारतीय परिस्थितियों एवं भारतीय भाव-भंगिमा का ही चित्रण हुआ तथा किसी विदेशज प्रभाव की कल्पना दूरारद ही सिद्ध होती है।

कृषि विश्वविद्यालय, पालमपुर,
कांगड़ा (हि०प्र०)

---

1. कुछ ने पारसी की कथाएं भी ली है, पर ऐसी ही दो कथाएं हैं मुल्ला दाऊद की कथा और 'सूफ्जुलेखां' की कथा। नागरी प्राचारिणी पत्रिका वर्ष ५०, अंक १-२ सं० २००२, श्री विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृष्ठ ५१।

कांगड़ी कविता : एक सर्वेक्षण–एक दृष्टि

—डॉ॰ गौतम शर्मा व्यथित

कांगड़ी कविता : अभिप्राय, क्षेत्र विस्तार :

कांगड़ी कविता से अभिप्राय कांगड़ी उप-भाषा में रचित काव्य से है। इसका क्षेत्र विस्तार भौगोलिक दृष्टि से कांगड़ा का पुराना मान-चित्र माना है जिसमें हमीरपुर, ऊना का कुछ भाग, जोगिन्द्रनगर उप मण्डल का निचला भाग तथा चम्बा-भटियात के सीमान्ती भाग भी सम्मिलित समझे हैं। कांगड़ी उपभाषा में मौलिक साहित्य सृजन निरन्तर बढ़ा है। अतः इसके रचित साहित्य के विभिन्न पक्षों का सर्वेक्षण एवं मूल्यांकन करने की आवश्यकता सहज प्रतीत होती है। इस भाषा का वाचिक सौंदर्य इतना प्रभावी है कि प्रत्येक श्रोता इसकी मधुरता लूटना चाहता है। यह लिखने में सहज, मीठी कहावतों एवं मुहावरों भरी कथन एवं श्रवण के सहज आकर्षण रखती है। प्रस्तुत लेख में कांगड़ी कविता अथवा कांगड़ी–काव्य क्षेत्र में प्रकाशित साहित्य का सर्वेक्षण एवं संक्षिप्त मूल्यांकन अभीष्ट है।

प्रश्न भाषा का :

सन् १९६६ में भाषाई आधार पर राज्यों का पुनर्गठन–राज्य भाषाओं की तलाश, उनके विकास, शोध एवं साहित्य सृजन सम्बन्धी अनेक प्रश्न योजनाएं लाया। सामयिक आवश्यकता की समस्या पूर्ति में हिमाचल में 'राज्य भाषा संस्थान' की स्थापना हुई, कालान्तर, भाषा, कला संस्थान शिमला से ही मार्च सन् १९६६ में हिम भारती का प्रकाशन आरम्भ हुआ। इसके दूसरे अंक जून १९६९ में कांगड़ी कविता प्रकाशित रूप में पाठक तक पहुंची। इसी वर्ष 'मेरा देश हिमाचल' तथा 'चेत्ते' काव्य संग्रह प्रकाशित हुए। तदनन्तर हिमाचल की विभिन्न बोलियों में लिखने का क्रम बढ़ने लगा, कवि संख्या में उत्तरोतर वृद्धि हुई।

सर्वेक्षण के आधार :

प्रस्तुत सर्वेक्षण हेतु निम्नलिखित आधार अपनाए गए हैं :—

(क) लोक काव्य में अनुभूत कांगड़ी कविता के स्रोत।
(ख) शोध पत्रों-निबन्धों आदि में प्रकाशित रूप में उपलब्ध एतत् सम्बन्धी विवरण।
(ग) प्रकाशित रूप में उपलब्ध काव्य संग्रह।
(घ) पत्र पत्रिकाओं में संकलित–प्रकाशित कांगड़ी कविता।

ये सभी आधार क्षेत्र विस्तार में अत्यन्त व्यापक है। इनका सीमांतीकरण सहज संभव नहीं। न ही इन सब तक मेरी व्यक्तिगत पहुंच ही सम्भव है। फिर भी पूर्ण प्रयास रहा है कि

महत्वपूर्ण संकेत यथा संभव माध्यमों में प्राप्त कर विचारे जाएं। इतनी संचेतना के बावजूद भी किसी नाम रचना, पुस्तक आदि के विववण छूट जाने की दिशा में विनम्र निवेदन है कि मुझे सूचित करें, ताकि मेरा यह कार्य पूर्णतः पा सके।

ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य :

प्रत्येक भाषा और मानव जीवन परम्परा से लोक भाषा और लोक जीवन के गर्भ में पलते बढ़ते विकसित हुए हैं। लोक काव्य ही शिष्ट काव्य का बिछौना है। जिस पर बैठकर इसके साधक काल-चिन्तन और युग-साधना की मालाएं फेरते आए हैं, और इसी क्रम में आहुति रूप में किसी भी साहित्य अथवा भाषा को श्रेष्ठ रचनाएं मिलती रही हैं।

कांगड़ी कविता के मूल बीज भी लोक काव्य में परम्परित है। कांगड़ी लोक काव्य परम्परा में पुराना है और अपनी विशिष्टताओं पर कुछ सोचने समझने पर विवश करता है। 'लोक' शब्द की परिभाषा बांधते अधिकांशतः आलोचक इस मत के हैं कि शहरों से दूर शिक्षा एवं ज्ञान विज्ञान के प्रभावों से अछूता, अपनी परम्परित जीवन पद्धति में जीता मनुष्य समूह, लोक या फोक है। यद्यपि इसी परिभाषा को आधार मानें तो कांगड़ी लोक काव्य का अधिकांश भाग, विशेष कर संस्कार गीत लोक-गीत नहीं लगते। इन गीतों का विषय वेद पुराणों से जुड़ा है और शैली में ये रचनाएं राग रागनियों में बन्धी हैं। अतः अधिकांश गीत किसी पठित समाज की जिसके पास वैदिक एवं पुराणिक साहित्य की परम्परा रही हैं, रचनाएं हैं। इन्हें अपढ़, गंवार लोक-रचनाएं नहीं माना जा सकता। दूसरी दृष्टि से ये रचनाएं संस्कारों की कर्म कांड पद्धति के बिल्कुल समानान्तर चलती हैं। आगे पीछे इनका कोई महत्व नहीं, संदर्भ नहीं। यह शोध-समीक्षा का एक अलग विषय है। अध्ययन सुविधा के लिए मैंने कांगड़ी काव्य परम्परा को इस प्रकार वर्गीकृत किया है जो आज की कांगड़ी कविता की पूर्व पीठिका मानी जा सकती है :

(क) लोक काव्य रूप–संस्कार, पूजा व्रत मोख आदि अनुष्ठानों सम्बन्धी गीत। लोक गाथा रूप।

(ख) दरबारी काव्य अथवा भट-साहित्य।

(ग) स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रेरित काव्य।

(घ) सुधार वादी काव्य।

(ङ) स्वतन्त्रोत्तर-कालीन काव्य।

लोक काव्य रूप :

प्रथम वर्ग का काव्य लोक-काव्य के अन्तर्गत प्रचलित एवं ग्रहीत है। परन्तु जैसा कि ऊपर स्पष्ट किया गया है लोक काव्य के इस वर्ग में शिष्ट काव्य की सभी विशेषताओं को सहजता से पहचाना परखा जा सकता है। इनका कथय तथा शैली पक्ष-भाषा, संगीत, बिम्ब, प्रतीक सभी शिष्ट वर्ग की सृजना लगते हैं। कांगड़ी कविता के मूल बीज इस काव्य में बिना किसी कठिनाई के ढूंडे जा सकते हैं, इसमें दो रायें नहीं।

दरबारी काव्य :

कांगड़ी कविता का लिखित एवं प्रमाणित रूप सतारहवीं शताब्दी से उपलब्ध होता है। इस दिशा में गुलेर राज्य के नृपति स्व० बलदेव सिंह की हस्तलिपि में उपलब्ध गीतियां उधृत की गई हैं। जो विक्रम सिंह १६६२-१६७५ की रानी की रचनाएं मानी हैं। एक गीति में विक्रम नरेश का शौर्य वर्णन है। दूसरी गीति में प्रभु भक्ति, दान तथा दया भावना का ज़िक्र है।

कुछक विद्वानों ने कांगड़ी कविता का मूल अथवा आरम्भ गुलेर रियासत के राजा शमशेर सिंह १८२८-१८७० के समकालीन कवि रूद्रदत्त से माना है, उनके कांगड़ी में रचित दो छन्द ही प्रमाण रूप में उपलब्ध हैं, शेष कविता-साधना हिन्दी में ही उपलब्ध है। इन दो छंदों में भाषा का रूप मधुर, चुभता, चूहल करता थिरकन से भरा है। ऐसा प्रतीत होता है कि नायिका की सहेलियां उस पर व्यंग्य करती रूठा मना रही हैं। शब्द प्रयोग साहित्यिक और नाप तोल कर रखा गया है।

अज सौंपणा घर गुआंडणी की, अतै अप्पू की छैल सिंगार बणाणा,
उन्हें होए दे मते दिन आयां दियां, न्हवाड़े मने दा जाई रोस चुकाणा।
नहीं जाणदी अहौं कुत गल्ला रुठे, गलें लाई के सज्जण अप्पुं मनाणा,
तुस दोयो सहेलियो साथ चलो, असें अपणे प्यारे की दिक्खणा जाणा।

परन्तु यह विचार अंतिम नहीं लगता। कांगड़ा में भी अनेक छोटी-बड़ी रियासतें रही हैं। राजदरबारों में भाटों के रहने की परम्परा भी थी। यहां कई स्थानों पर इनके परिवार बसे हैं जिन्हें तत्कालीन राजाओं द्वारा प्रशंसा बखान पर ज़मीनें और पट्टे मिले हैं।

इसी परम्परा से जुड़े दो कवित पण्डित शिवराम, नेरटी निवासी ने मुझे सुनाए थे। एक में छत्तीस रंगों के नाम इस प्रकार गिनाए हैं :

अंबीरी, असमानी, अंबिया, संदली बदामी,
चीनी बैंगनी, कपूरी काही केसरी बखानी है।
गुलाबी गुलाबांसी लाख बकमी तो बसंती,
किरमची, नरंगी, नीला, लाल, तां प्रमाण है।
सोसणी, पियाजी, रद जोजी, खसखासा,
मुंगिया, रंग चिट्टा, जमूरता, स्याह सेवती नदान है।
पुस्ता की पुस्तयाई ककरेजी, इलताई,
जंगालिया, सुरमई छत्ती रंगों के नाम हैं।[1]

---

1. यह कवितदास कराड़, नेरटी निवासी ने उन्हें सुनाया था।

स्वतन्त्रता आन्दोलन से प्रेरित काव्य :

काल चिन्तन व्यापक है। भारतीय मानसिकता मूल संवेदना में समान है। अनुपात का अन्तर हो सकता है। साम्राज्यवाद के विरोध में उठे स्वर, मनोविकार समूचे भारत में फैले हैं। ब्रिटिश सरकार द्वारा पहाड़ी रियासतों का अतिक्रमण, विरोध में सामरिक अभियान, स्वतन्त्रता वीरों की पकड़-धकड़, देश निकाला, फांसी आदि की घटनाएं थोड़ी यहां भी घटी हैं। सन् १८५७ के स्वतन्त्रता समर की भैरवी समूचे भारत में गूंजी थी। वह निश्चित रूप से हिमालय से टकराती इस घाटी में भी अनुगुंजित हुई थी।

'पहाड़ी गांधी' बाबा कांशीराम तथा उसी वर्ग के अन्य वीर सपूतों ने अपनी भावनाओं को व्यक्त करने के लिए स्थानीय लोक मानसिकता को प्रभावित करने के लिए स्थानीय भाषा में श्रेष्ठ रचनाएं की हैं। कुछेक के विचार में बाबा पहाड़ी के आदि कवि हैं। उनका समय ११ जुलाई सन् १८८२ से १५ अक्तूबर सन् १९४३ तक था। इनकी संगत देश के स्वतन्त्रता संग्रामियों से थी। वे कांगड़ा की जसवां घाटी में आज़ादी का झंडा लहराते देश भक्ति के गीत गाते, लोगों को गोरों के विरुद्ध भड़काते रहे। जेल भी गए। वहां साहित्य भी रचा। इनका काव्य लिखित रूप में भी उपलब्ध होता है। अतः कांगड़ी काव्य में बाबा जी का नाम गिना जाना वाजिब ही है।

परन्तु इसी शताब्दी में स्थानीय वीरों की साहसिक एवं रोमांचक जीवन कहानियों को ले कर रची परम्परित वारों को यदि विश्लेषित किया जाए तो बदालों का साहित्य भी कांगड़ी काव्य में महत्वपूर्ण स्थान रखेगा। बाबा की कविता का विमर्श हमें इस निष्कर्ष पर लाता है कि उसका विषय फुटकर है, भाषा का रूप खिचड़ी और स्वरूप में साहित्यिक की अपेक्षा लौकिक अधिक है। अतः इन्हें पहाड़ी का आदि कवि मानना तर्क संगत नहीं लगता। परन्तु रचनात्मक साहित्य में इनका स्थान विवाद रहित है। इसी काल खण्ड में सिक्खों तथा गोरखों के आक्रमणों सम्बन्धी लोक-काव्य रचनाएं भी इस क्षेत्र में बसे बुढ़ों-बुढ़ियों तथा जाती विशेष लोक-गायकों द्वारा सुने सुनाए जाते हैं।

सुधारवादी काव्य :

ब्रिटिश राज्य के विस्तार के साथ भारत की अर्थ नीति में परिवर्तन आया। फलस्वरूप भारतीय आचार विचार तथा समाज की जड़ता को धक्का लगा। सर्वत्र धर्म और संस्कृति के बचाव का प्रश्न उठा। परिणाम स्वरूप कई संगठनों, सभा सोसाइटियों का जन्म हुआ जिन्होंने अंग्रेजी रीति-नीति का खण्डन कर भारतीयता का नारा लगाया। अन्य राज्यों की भांति पंजाब में भी ये आन्दोलन बिखरे जिनकी अनुगूंज धवल गिरी से टकराती कांगड़ा घाटी में भी सुनाई पड़ी। कवि रुद्रदत्त और हरनाम दास की कविता में ऐसे स्वर मिलते हैं। रुद्रदत की कविता का एक उदाहरण देखिए :—

धर्म किआं गुआया कोट छोटे, कुर्ते लम्मे।
चोटी कट्टी, दुम्बे लम्मे, मुच्छों का किया सफाया।[1]

---

1. ओम प्रकाश प्रेमी : स्वाद बखरे-बखरे।

प्रस्तुत अवतरण में अंग्रेजी सभ्यता के प्रचार प्रसार तथा भारतीयता के नष्ट होने का संकेत मिलता है। आर्य समाज की विचार धारा से प्रभावित हरनामदास की कविता में तो लोक-रीतियों, अन्धविश्वासों आदि के प्रति कटु आलोचना मिलती है। एक सीधा स्पष्ट संदेश कि सही शिक्षा और ज्ञान के बिना सामाजिक बुराईयों का उन्मूलन सम्भव नहीं। सम्पूर्ण लोक की स्पष्ट व्यानी करता एक अवतरण देखिए :

माए मैं तां मुनुएं दा पातर पाणा
दराणियां जठाणियां जादू जे कीता।
मैं गुगे सलोहे जो जाणा
अड़ेसियां-पड़ेसियां छाड छडाणी, जोगिएं दबातरा बजाणा
चेले-जोगी ओपरा सदे, दसाधणी साध बुलाणा
कपड़े भांडे जोगियां नि छड्डे, चेलेयां खाणे जो दाणा
हरनामदास इक ज्ञाने बाहजी, मुन्नुएं दा रोग नी जाणा।[1]

इनका काव्य 'गौरक्षा आन्दोलन' सम्बन्धी भी है। दुर्भाग्यवश इन का काव्य रचित संग्रहीत एवं संपादित होकर सामने नहीं आ सका है। संभवतया इसी दिशा में अन्य लोगों ने भी रचनाएं की होंगी। अतः इस दिशा में भी सर्वेक्षण एवं अध्ययन की आवश्यकता है।

दिल्ली, बम्बई में गठित कांगड़ा सभाओं द्वारा प्रकाशित अपनी वार्षिक स्मारिकाओं में कांगड़ी कविता के कुछ रूप छपे हैं, ऐसा बताया गया है। प्रो० हरचरण शास्त्री, रूप सिंह 'फूल' आदि भी स्वतंत्रता से पूर्व जब वे लाहौर कालेज में अध्ययनरत थे, वहां पर आयोजित अपनी सभाओं में कांगड़ी कविता सुनाया करते। परन्तु इसका भी समय से जुड़ा कोई ठोस प्रमाण हाथ नहीं लगा।

उन्नीसवीं शताब्दी के चौथे-पांचवें दशक के मध्य नरेन्द्र कौल द्वारा भी कांगड़ी कविता की रचना हुई है। नेहरु के व्यक्तित्व से प्रभावित एक कवितांश :

धन सेंह मां जम्या लाल, धन भगवान मोती लाल,
असां धन जिन्हां हाखीं दिखया, धन-धन पंडत जवाहरलाल।

एक अन्य कविता में मनुष्य की अवयवहारिकता अकर्मन्यता को व्यंग्य शैली में ललकारा है।

पेट तां अपणा कुत्ते पाली लेंदे।
रहणे ताईं फरड़ू जगह सोती लेंदे।

---

1. प्राप्ति स्थान : श्री भू देव शास्त्री, सुजानपुर टीहरा। इनके अनुसार हरनाम दास द्वारा रचित ऐसी अनेकों रचनाएं हैं जिसमें साहित्यिक गुण विद्यमान हैं। परन्तु उनका सम्पादन एक समस्या है।

निष्कर्ष :

समग्रतः यह कहा जा सकता है कि कांगड़ी कविता की परम्परा नई नहीं। लोककाव्य के साथ-साथ साहित्यिक रचनाएं भी समानान्तर होती रही हैं। अतः इस सारी सामग्री को इसकी पूर्व पीठिका के रूप में ग्रहण करना होगा। जब भी इसकी ऐतिहासिकता का प्रश्न उठे, इस सारी सामग्री पर गहन विचार तथा विश्लेषण एक वैज्ञानिक अध्ययन की अपेक्षा रखेगा।

प्रेरक तत्व :

कांगड़ी कविता के विकास के कुछ प्रेरक तत्वों का संक्षिप्त विवरण देना जरूरी ठहराता है। सन् १९५६ से सन् १९६३ के मध्य कांगड़ी कवि डोगरी कवि समाज के सम्पर्क में आया। डोगरी संस्था जम्मू की यह प्रबल आकांक्षा रही कि कांगड़ा घाटी का लेखक वर्ग उनके साथ-साथ चले, उन की लेखन पद्धति को अपना कर डोगरी भाषा एवं साहित्य को समृद्ध करे। फलस्वरूप धर्मशाला, कांगड़ा, शाहपुर आदि स्थानों पर विशाल सम्मेलनों का आयोजन हुआ, वे निःशुल्क आते स्थानीय कविमानस तथा श्रोता को मन्त्रमुग्ध करते रहे। जे०के० अकादमी से प्रकाशित डोगरी शिराज़ा तथा डोगरी संस्था की 'नमी चेतना' त्रैमासिक में भी यहां का कवि स्थान पाने लगा। सन् १९६४ में डा० रन्धावा के प्रयत्नों से जालन्धर आकाश वाणी से 'पर्वत की गूंज' कांगड़ी लोकगीतों के प्रसारण का कार्यक्रम आरम्भ हुआ जिसमें कालान्तर 'कविता-पाठ' का प्रसारण भी आरम्भ हुआ। गीत-संगीत के प्रति संचेतना बढ़ी।

इसी संदर्भ में कांगड़ा में आयोजित तरुण परिषद, त्रिगर्त हिन्दी साहित्य संगम, बज़मे अदब कांगड़ा ने जो भूमिकाएं निभाई हैं, उल्लेखनीय हैं। सन् १९६६ में राज्यों का भाषाई आधार पर पुनर्गठन हुआ। कांगड़ा का कवि आकाशवाणी के सम्पर्क में आया। प्रदेश के विभिन्न भागों के लेखक वर्ग को विशेष अवसरों पर एकत्रित होकर कुछ कहने, सुनने एवं दिशा पाने के अवसर मिलने लगे। प्रदेश की भाषा, कला, संस्कृति को विकसित करने के लिए भाषा विभाग और कालान्तर में साहित्य, कला अकादमी की स्थापना हुई। 'हिमभारती' त्रैमासिक ने भी प्रोत्साहनी भूमिका निभाई। समग्रतः इस सब से कांगड़ी कविता को नये तथा विविध आयाम मिले।

कांगड़ी प्रकाशित काव्य :

विवेच्य काव्य का सर्वेक्षण करने पर जो प्रकाशित काव्य उपलब्ध होता है उसे इस प्रकार रखा जा सकता है :

सन् १९६० से पूर्व का काव्य, सन् १९६० के बाद का प्रकाशित काव्य, फुटकर रूप में पत्र-पत्रिकाओं में उपलब्ध काव्य।

सन् १९६० से पूर्व विवेच्य काव्य का कोई निखरा रूप दिखाई नहीं देता। "पुष्पांजली" नामक एक छोटी सी काव्य पुस्तिका का जिक्र आया है। यह प्रथम संग्रह ३० जनवरी सन् १९५४ को प्रकाशित हुआ था। इसमें ललित रैणा ने स्थानीय प्राकृतिक चित्रण, लोक संस्कृति का मनोहारी

वर्णन तथा कांगड़ी धरती के प्रति संवेदना को सहज तथा काव्यमयी भाषा में करने का सफल प्रयास किया है। कांगड़ा घाटी के लोक जीवन के विषय में एक दृश्य देखिए :

हत्थां पर चित्र त्यूरे दे कढदियां।
टोपियां कढदियां, तिल्ले कने जड़दियां।[1]

प्रस्तुत अवतरण में कांगड़ी लोक-कलाओं मैंहदी से हाथ पर चित्र बनाना, टोपी, रूमाल को तिल्ला गोटा लगाकर कढ़ाई करना तथा पूजा परसना करना आदि का संकेत है। अन्त में कांगड़ा घाटी में रहने की इच्छा प्रकट की गई है। प्रवास काल में अपनी धरती का मोह, स्मृति, वहां के लोकाचारों, तीज-त्यौहारों मेलों-ठेलों के स्मृति-दंश उन्हें यह कहने को विवश कर गए :

मंगलां त्यौहारां देवियां गांदियां, टमकां बजांदे सूर।
ललित बचारा गीतां बणादा, रैंहदा देसे ते दूर।[2]

इसी दशक में ग्रामीण विकास, शिक्षा प्रसार, रहन-सहन में परिवर्तन आदि भावों को लेकर भी काव्य रचे जाने की संम्भावनाएं सहज बनती हैं। परन्तु कोई प्रमाणिक पुस्तक अथवा पांडुलिपि हस्तगत नहीं हुई। इसी क्रम में कुछ रचनाएं अनाम रह कर लोक सम्पति बनी लोक काव्य के समुद्र में रच पच गई। भारत की पंच-वर्षीय योजना से जुड़ी प्रत्येक समस्या से सम्बन्धित लोक-गीत इसके गवाह हैं। सन् १९६० के बाद कांगड़ी में प्रकाशित काव्य का क्रमिक इतिहास भी मिलता है।

संपादित काव्य संग्रह :

१. **काव्य धारा–एक : सन् १९७१ :** इसमें कांगड़ी के १३ कवि संकलित हैं।

२. **काव्य धारा–दो : सन् १९७३ :** इसमें कुल ३६ कवि संकलित हैं जिनमें १६ कवि कांगड़ी के हैं।

३. **काव्य धारा–तीन : सन् १९७४ :** इसमें कांगड़ी के २६ कवियों की रचनाएं संकलित हैं।

४. **माला रे मणके–सन् १९७६ :** इस संकलन में हिमाचल के ६३ कवियों की रचनाएं संकलित हैं। जिनमें २१ कवि कांगड़ी के हैं।

५. **मिन्जरां–सन् १९७७ :** कांगड़ा लोक साहित्य परिषद द्वारा प्रकाशित इस संग्रह में केवल कांगड़ी के ही २३ कवि संकलित हैं।

---

1. दे० ओम प्रकाश प्रेमी, स्वाद बखरे-बखरे।
2. सन्दर्भ वहीं।

कुछ डोगरी काव्य संकलनों में भी कांगड़ी कविता प्रकाशित हुई है। सर्वेक्षण पर मुझे दो संकलन उपलब्ध हुए है :–

१. **कूंज कतारां** : इस में कुल तीस कवि संकलित हैं, दो कांगड़ी कवि भी सम्मिलित हैं।

२. **चान्दी मढ़ोईयां ग्रौंसियां सुन्न्‌ मढ़ोयों बोल** : इस संग्रह में डोगरी की चुनी हुई मज़लें संकलित हैं। कुल ४६ कवियों में सात कांगड़ी कवि भी हैं। प्रस्तुत संकलन कांगड़ी में गज़ल कहने की समर्थ व्यक्त करता है।

खण्ड काव्य :

अब तक कांगड़ी में प्रकाशित रूप में केवल एक ही खण्ड काव्य उपलब्ध है 'भ्याकणा भुल्या'[1]। शेष अवस्थी की इस रचना के केवल ३० पृष्ठ है, जिस का प्रकाशन सन् १९७८ में हुआ। कांगड़ी काव्य रचना इतिहास में यह वर्ष एक नई उपलब्धि लेकर आया, जो प्रत्येक दृष्टि से सराहनीय है।

प्रस्तुत रचना में कांगड़ा क्षेत्रीय पठित युवा मानसिकता में पलता नगरीय जीवन का मोह, एक प्रकार का सम्मोहनी प्रभाव, यथार्थ से साक्षात्कार करने पर पुनः ग्रामीण जीवन की ओर, कोई छोटा-मोटा धन्धा शुरू कर जीवन यापन करने का संकल्प लेना, बड़ी कुशलता से व्यंजित हुआ है। भाषा रूप शुद्ध कांगड़ी है।

अनूदित काव्य :

कांगड़ी में कुछ काव्यानुवाद भी हुए हैं। सर्वेक्षण पर मुझे निम्नलिखित रचनाएं उपलब्ध हुई हैं :–

१. **पहाड़ी दुर्गा सप्तशती**[2] **:** शारदा पंचकरण, सन् १९७३, इस में संस्कृत रचित दुर्गा सप्तशती का अध्यायवार उसी शैली में कांगड़ी पद्यानुवाद मिलता है।

२. **मिर्जा गालिब** : प्रो० परमानन्द शर्मा, सन् १९७२, 'हिम सुमन'[3] के प्रथम अंक में मिर्जा ग़ालब के 'शेर' (चुनी हुई गज़लों के) पढ़ने को मिले। इसमें मूल कवि की तर्जेब्यानी और काव्य की भाव-प्रवणता सर्वत्र जीवित मिलती है। उर्दू शब्दों के लिए सही अर्थ के संवाहक कांगड़ी शब्द खोजे गये हैं। यदि यह अनुवाद पुस्तक रूप में आ सका तो कांगड़ी काव्य में एक मील पत्थर सिद्ध होगा।

---

1. लक्ष्मी प्रकाशन, गांधी ग्राम, बैजनाथ, मूल्य 8 रु०।
2. पोथीघर प्रकाशन, श्यामनगर, धर्मशाला।
3. कांगड़ा कल्चरल सोसाईटी, धर्मशाला द्वारा प्रकाशित पत्रिका अंक १, वर्ष १।

३. **विक्रमोर्वशीयम**[1] **:** दुर्गादत्त शास्त्री, सन् १९७७, महाकवि कालिदास कृत इस मूल रचना का शास्त्री जी ने बड़ी तत्परता एवं श्रम साधना से कांगड़ी अनुवाद प्रस्तुत किया है। इस में कुल ८४ पृष्ठ हैं।

४. **पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित कांगड़ी कविता :** कांगड़ी कविता फुटकर रूप में विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं, स्मारिकाओं आदि में भी छपती रही है।

सर्वेक्षण पर एक दृष्टि : साठोत्तरी कविता :

वस्तु पक्ष :

सन् १९६० से १९७० के मध्य प्रकाशित काव्य के अनुशीलन करने पर प्रकृति चित्रण, भक्ति भाव, कृषक-श्रमिक वर्ग की समस्या चित्रण, लोक-संस्कृति चित्रण, सौन्दर्य चित्रण, सामायिक आन्दोलनों का स्वर आदि विषय रूप मिलते हैं। ग्रामीण परिवेश, वृक्षों, नदी-नालों, तालाबों, बावलियों, पूजा-जातरा, पर्व-त्योहार से जुड़ी लोक मानसी संवेदना तथा लोक तत्वों ने भी स्थान पाये हैं। भारत-पाक युद्ध में हुए शहीदों की वीरता एवं अद्मय उत्साह, ओजपूर्ण शैली में व्यंजित हुआ है। विरह की मार्मिकता गहरा प्रभाव लिए है।

समग्रतः :

इस खण्ड की कविता हृदय के सभी पक्षों से जुड़ी है। सामाजिक एवं आर्थिक संत्रास का स्वर मर्यादाओं के अंकुश में दबा-दबा सा बुड़बुड़ाताहै। पहाड़ी श्रमिक, कृषक, खेतिहर मज़दूर सामाजिक सम्बन्ध परम्पराओं, आर्थिक विसंगतियों आदि के प्रति कुछ कहना चाहता हुआ भी नहीं कह पाता, आंचलिक मान्यताएं उसे सहनशील बना कर रह गईं हैं। मालिक के प्रति वह आस्थावान है, भूमिपति के सामने वह विनम्र एवं उसकी दया का पात्र है, वर्षों तक उसका बन्धक रहने में आपत्ति नहीं उठाता। अधिकांशतः इस खण्ड का कवि भावुक है, आन्दोलनकारी वृत्तियां साहस नहीं कर पाईं, कारण कवि का सरकारी कर्मचारी होना अधिक ठहरता है, वह कुछ कहना चाहता हुआ भी कुछ नहीं कह पाता।[2]

कला पक्ष :

शैली की दृष्टि से इस काल खण्ड में कविता, लेखन, गीत, कवित्त, सवैया, कुंडलिया, चौपदा आदि छन्दों में हुआ है। स्वच्छन्द कविता भी मिलती है। गेयता लोक गीति शैली से प्रभावित है। सम्बोधन शैली की अधिकता है। काव्य शैली का केवल एक पक्ष उभरा है।[3]

---

1. कृष्णा ब्रदर्ज, मेन बाजार, कांगड़ा।
2. सन्दर्भ :—पुष्पांजली, मेरा देश म्हाचल, चेत्ते, मनोरंजन भैंट, हिम भारती के अंकों में इस अवधि में प्रकाशित काव्य तथा शीराज़ा एवं हिम भारती के अंक। सोमसी जून १९७६, कांगड़ी कविता में मध्य वर्गीय जन जीवन : सुखदेव शर्मा।
3. सन्दर्भ :—इस काल खण्ड में प्रकाशित काव्य संकलन, हिम भारती के अंक, शीराज़ा, तथा नयी चेतना के अंक।

सत्तरोत्तरी कविता :

सत्तरोत्तरी काव्य रचना में परवर्ती काव्य वस्तु के प्रभाव तो हैं ही, समायिक बोध भी झलकता है। प्रकृति चित्रण की सपाट ब्यानी में मानवीय संवेदना, भूख-नंगापन गरीबी, अमेल विवाह तथा अन्य व्यावहारिक आवश्यकताओं की ओर भी कवि उन्मुख हुआ है। बेरोजगारी, मूल्यों की वृद्धि, सामाजिक शोषण, नारी स्वतन्त्रता, कुरीतियों का उन्मूलन, आम आदमी की पहचान आदि भी इसके विषय बने हैं। आंचलिक जीवन पद्धति, रहन-सहन, आदत व्यवहार, रिश्तेदारियां ग्रामीण विकास, बिजली, पानी, यातायात की सुविधाओं ने उसके जीवन का ढर्रा ही बदल दिया है। अब गांव का कृषक बन्धुआ नहीं, लेन-देन पर भी वह किसी के अधीन नहीं, उसके जीवन में नई मस्तियां हैं, नई अटखेलियां हैं। अभिप्राय: इस क्षेत्र की मानसिकता बदली है। यहां का कवि भी इस सब के प्रति चेतनशील हुआ है। ऐसे उद्धरण भी इस काल खण्ड की कविता में सहज दिखाई देते हैं। आंचलिक मानसिक संचेतना का संचरण उसके चिन्तन में पनपा है।[1]

शैली की दृष्टि से गीत रचना समृद्ध, सशक्त तथा लोकप्रिय हुई है। स्वच्छन्द, अतुकान्त, नई कविता, अकविता की प्रतिछाया भी झलकती है। गजल के क्षेत्र में भी कइयों ने पैर टिकाए तथा अच्छे प्रयोग किए हैं।[2] खण्ड काव्य की दिशा में केवल एक ही रचना 'भ्याकणा भुल्या' उपलब्ध होती। यह चौपदा में रची गई है। रचना का समग्र प्रभाव पाठक पर खूब जमता है। अनुवाद कार्यों में मूल रचना की संवेदना सर्वत्र सुरक्षित रही है। परन्तु इस दिशा में अधिक कार्य नहीं हो पाया।[3]

विशेषतायें :

प्रकाशित काव्य रचनाओं का सम्यक अध्ययन करने पर हमें कांगड़ी कविता की मूल विशेषताएं इस प्रकार मिलती हैं :–

प्रकृति चित्रण, प्रेम भाव की व्यञ्जना, विरह वर्णन का आधिक्य, प्रेम, सहानुभूति, सद्भावना, सहकारिता का सन्देश, रूप चित्रण, शोषित वर्ग का चित्रण, व्यंग्य एवं कटोक्तियां, लोक-जीवन का प्रभाव, सामयिक आन्दोलनों का प्रभाव, करूण, प्रेम, वीर, शान्त रस की प्रधानता, प्रकृतिका, मानवी कृत रूप, लोक-काव्य का प्रभाव, मूक्तक, गीति शैली का आधिक्य, व्यावहारिक जीवन तथा प्रकृति से गृहीत बिम्ब एवं प्रतीक प्रयोग।

---

1. क) सन्दर्भ पुस्तकें : सन् १९७० के पश्चात् प्रकाशित काव्य संकलन : विशेष कर –सांझा दे परछौयें, पुंगरासां, भागसू दे नौणे।
   ख) हिम भारती में सन् १९७० के पश्चात् प्रकाशित कवितायें।
   ग) डोगरी शिराजा, नयी चेतना, काव्य धारा १, २, ३, माला रे मणके।
2. सन्दर्भ : प्रकाशित काव्य संकलनों एवं पत्रिकाओं में।
3. प्रकाशित रचनायें।

कांगड़ी काव्य समीक्षकों के दायरे में :

कांगड़ी कविता को लेकर अब तक केवल तीन-चार निबन्ध पढ़ने को मिलते हैं। सभी का अध्ययन इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि कोई भी समीक्षक इससे न्याय नहीं कर पाया है। वास्तव में साहित्य की किसी भी विधा की समीक्षा, समीक्षक विशेष से उसकी मूल संवेदना, परम्परा, परिवेश और पद्धति से पूर्ण परिचित होने की अपेक्षा रखती है। परन्तु पहली समीक्षा में लेखक भावुकता में बहता अपने आस-पास घूमता रहा है। दूर-पार देखने का प्रयास कम किया गया है। दृष्टिकोण भी प्रशंसावादी रहा है। दूसरी में समीक्षक कवियों के प्रति उपेक्षा, विरोध, अस्वीकार आदि का भाव लेकर चला है अतः उसे सर्वत्र कमियां ही सूझी हैं, अच्छाई देखने का प्रयास ही नहीं हुआ है, जो हुआ भी वह भी रोते की आंखें पोंछने वाली बात लगती है। तीसरे समीक्षक भी दूसरे के करीब ही बैठ रहे हैं। उनसे भी इसकी मनोभूमि तक पहुंच कर कुछ कहने की आशा अधूरी रही। समग्रतः कांगड़ी कविता समीक्षक की दृष्टि में – साधारण, कवित्वहीन, प्रशंसावादी घारों-नारों तक सीमित, कांगड़ी कवि कविता की नब्ज के अनजान, दिशाभ्रम में उलझा, सामयिकता का उलझाव, राजनैतिक मोह आदि में फंसी बताई गई है। चौथा समीक्षक भी सम्बन्ध मोह में उलझा कुछ नया नहीं कह सका।[1]

एक सफाई–एक वास्तविकता :

परन्तु ऐसा नहीं है। कांगड़ी कविता की समीक्षा हिन्दी कविता-समीक्षा पद्धति अथवा कोण से संभव नहीं। साठोत्तरी हिन्दी कविता जैसी प्रवृतियां, विशेषताएं अभी तक यहां की मानसिकता में शतशः फलित नहीं होती, न ही उनके प्रतिफलित होने की इतनी संभावना है। वास्तव में यहां की जीवन पद्धति में आज भी स्थिरता है, अपनी मान्यताओं, माता-पिता, ईश्वर, धर्म, गुरु, पुरोहित सभी के प्रति विश्वस्त है। इसके भीतर बाहिर कोई युद्ध नहीं लड़ा जा रहा। न तो वह खिन्न है, न कुंठित वह तो अभावों को वरदान समझकर, भाग्य समझ कर निगल जाता है। दूसरों की खुशियों में नाचता गाता मस्तियां मारता है, कोई ईर्ष्या नहीं, कोई धोखा नहीं। अतः ऐसी पृष्ठ-भूमि में जी रहा कवि, हिन्दी कवि के समानान्तर जो आज दो विश्व युद्धों का अवशेष संस्कृति में उलझा है—तो नहीं रखा जा सकता। परन्तु इसकी वैकासिक यात्रा सीमा को दृष्टिगत रखते हुए यह निर्भीक कहा जा सकता है–इसने स्वयं को समझने, उत्तरदायित्व के प्रति चेतनशील होने का प्रयत्न किया है। व्यवहारिकता–चाहे किसी भी पक्ष की है–उसे ललकारा, चेतन किया है।[2]

साहित्य युग सापेक्ष है, परिस्थिति, परिवेश जन्म है। इस तिकोने आधार के बाहिर इसकी कोई और अपेक्षा जंचती नहीं। अतः स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल ही साहित्य चिन्तन धारा का संतरण हो रहा है, इसमें कोई संशय नहीं। बात उठाने को तो कहीं भी उंगली रखी जा

1. हमीरपुर में भाषा दिवस सन् १९८० के अवसर पर आयोजित लेखक संगोष्ठी में पढ़ा गया देसराज डोगरा का लेख।
2. सन् १९७७–१९८० तक की प्रकाशित कांगड़ी कविता देखिए।

सकती है। परन्तु मुक्तिबोध, अज्ञेय, गिरिजाकुमार आदि तारसप्तक कवियों जैसी मानसिकता को इसमें टटोलना अथवा उस सांचे में रखकर इसे परखना न तो वाजब है न ही न्यायसंगत।

निष्कर्ष :

कुल मिलाकर सन् १६६६ से (पुस्तक रूप में) प्रकाश में आया कांगड़ी कवि मानस उत्तरोत्तर विकासशील मिलता है। उसने हर क्षेत्र में नयी जमीन खोदने के भी प्रयास किये हैं। मनोहर सागर पालमपुरी, पी० शर्मा व्यथित, पीयुष गुलेरी, शबाव, शेष, सारस्वत, अग्नि, प्रेम, रक्षाकुमारी, सरोज पराशर, शिव उपाध्याय, देसराज डोगरा आदि का कवि समय की भाव लहरियों में संतरण करता अनुभूति की तरंगों में स्वयं को रसमग्न कर नवनीत स्वरूप कुछ नया कहने में भी समर्थ हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। प्रकाशन सुविधाएं तथा सरकारी प्रोत्साहन कम हैं। फलतः प्रकाशित काव्य से कुछ श्रेष्ठ काव्य-उपलब्धि की सम्भावनाएं आस्थावान बनी लटकी झूल रही है। इसमें सन्देह नहीं अगले दशक के आरम्भ तक कांगड़ी कविता का स्वरूप अनेक दिशा में लेता नया चिन्तन एवं अभिव्यक्ति कुशलता लाएगा।

हिन्दी विभाग,
राजकीय स्नातकोत्तर महा विद्यालय,
धर्मशाला

●★●

हिमाचल अकादमी के तत्वावधान में आयोजित मास जनवरी, ८१ से मास मार्च, ८१ तक संगीत, नाटक और नृत्य के क्षेत्र में गतिविधियां

—अशोक हंस

सांस्कृतिक दलों का अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान :

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी द्वारा संचालित सांस्कृतिक दलों की अन्तर्राज्यीय आदान-प्रदान योजना के अन्तर्गत भाषा एवं संस्कृति विभाग, हिमाचल प्रदेश एवं हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी के तत्वावधान में आयोजित हिमाचल प्रदेश का एक सांस्कृतिक दल दिनांक ७ फरवरी, १९८१ से २८ फरवरी, १९८१ तक महाराष्ट्र एवं गोवा प्रदेशों के भ्रमण के लिए भेजा गया। कुल ३७ कलाकारों के इस सांस्कृतिक दल में कलाकार प्रदेश के विभिन्न जिलों से आमन्त्रित किए गए थे। इन जिलों के नाम हैं : कुल्लू, मण्डी, शिमला, हमीरपुर, ऊना, कांगड़ा तथा चम्बा। दल के ट्रुप इंचार्ज श्री खेमराज गुप्त सागर एवं दल मैनेजर श्री छेरिंग डुगे थे।

हिमाचल प्रदेश की प्रसिद्ध लोक-गाथा 'रानी सूही का बलिदान' पर आधारित नाटक 'सूही माता चम्बयली रानी' का मंचन और विभिन्न जिलों के नृत्य एवं गीत इस भ्रमण के दौरान विभिन्न स्थानों पर प्रस्तुत किए गए। नृत्यों में से मुख्य कुल्लू नृत्य, महासू नाटी, पूजा नृत्य, चम्बा नृत्य एवं एकल नृत्य और गायन विभिन्न स्थानों पर प्रस्तुत किये गए। इस सांस्कृतिक दल ने महाराष्ट्र में थाने, पूना बारामती, लोनावाला, पनवेल एवं बम्बई और गोआ में बिचोलिम, पन्जी मरगांव, मोपासा, चन्द्रगांव और पाडा स्थानों पर अपने कार्यक्रम प्रस्तुत किए। इस दल ने महाराष्ट्र में दिनांक ७ फरवरी, १९८१ से १५ फरवरी, १९८१ तक तथा गोवा में दिनांक १६ फरवरी, १९८१ से २३ फरवरी, १९८१ तक भ्रमण किया।

नाटक 'सूही माता चम्बयाली रानी' का आलेख श्री खेमराज गुप्त सागर ने तैयार किया एवं नाटक का निर्देशन श्री अशोक हंस ने किया। लोक नृत्य का आयोजन श्री अशोक हंस एवं श्री छेरिंग डुगे ने किया। चम्बा जिला से नृत्य विशेषज्ञ श्री रमेश भारद्वाज, कुल्लू जिला से श्री कर्मसिंह, शिमला से नृत्य विशेषज्ञ श्री मोहन राठौर आमन्त्रित किए गए।

सन् १९७९ में दिनांक १९ नवम्बर, १९७९ से दिनांक ३ दिसम्बर, १९७९ तक हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा एक लोक नाट्य एवं नृत्य कार्यशाला का आयोजन किया गया था। इस कार्यशाला में हिमाचल प्रदेश के विभिन्न जिलों से कलाकार भाग लेने के लिए आमन्त्रित किए गए थे इस कार्यशाला में नाटक सूही माता-चम्बयाली रानी का अभ्यास एवं मंचन किया गया था। इसके अतिरिक्त कलाकारों को नाटक एवं नृत्य के क्षेत्र में सैद्धांतिक एव व्यवहारिक

प्रशिक्षण दिया गया था। प्रदेश के मुख्य जिलों : कुल्लू, चम्बा और सिरमौर के नृत्यों का व्यवहारिक प्रशिक्षण दिया। हिमाचल प्रदेश का सांस्कृतिक दल गोवा एवं महाराष्ट्र प्रदेश के भ्रमण के लिए मुख्य रूप से कार्यशाला के आधार पर भेजा गया था। इन प्रदेशों के विभिन्न स्थानों पर कार्यक्रम देने के पश्चात् वापसी में शिमला में दिनांक २ मार्च, ८१ को इसी सांस्कृतिक दल द्वारा नाटक 'सूही माता-चम्बयाली रानी' का मंचन एवं अन्य सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया।

प्रदेश में पूरे सांस्कृतिक दल की तैयारी के लिए व्यय भाषा एवं संस्कृति विभाग हिमाचल प्रदेश शिमला द्वारा किया गया एवं संस्कृति कार्यक्रम और नाटक की तैयारी हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी शिमला द्वारा आयोजित की गई। नाटक 'सूही माता—छम्बयाली रानी' और विभिन्न नृत्यों एवं गीतों की विवरणिका (वरोशर) संलग्न है।

जन-जातीय लोक कलाओं का उत्सव :

केन्द्रीय संगीत नाटक अकादमी के सहयोग से हिमाचल कला-संस्कृति एवं भाषा अकादमी के तत्वावधान में दिनांक २८ मार्च से दिनांक ३०, १९८१ तक राममन्दिर हाल और गेयटी थियेटर शिमला में एक जन-जातीय लोक कलाओं का उत्सव आयोजित किया गया। इस उत्सव में लाहुल-स्पीति जिला के दल, किन्नौर जिला के दल एवं चम्बा जिला के गुजर एवं गद्दी दलों ने भाग लिया। इस तरह से कुल ६० कलाकारों ने इस दल में भाग लिया। दिनांक २९ मार्च, १९८१ से ३० मार्च, १९८१ तक इन विभिन्न दलों का लोक-कलाओं पर प्रलेखन कार्य किया और २९ मार्च और ३० मार्च, १९८१ को इन दलों द्वारा अपने जिलों के लोक-नृत्य प्रस्तुत किए गए।

लोक नृत्यों का प्रस्तुतीकरण :

गेयटी थियेटर शिमला में दिनांक २९ मार्च और ३० मार्च, १९८१ को इन लोक नृत्यों का कार्यक्रम प्रष्तुत किया गया। दिनांक २९ मार्च प्रातः इस कार्यक्रम का आगमन समारोह हुआ। इस कार्यक्रम का उद्‌घाटन हिमाचल प्रदेश के मुख्यमन्त्री श्री रामलाल ठाकुर जी ने किया। इस कार्यक्रम में माननीय शिक्षा, भाषा एवं संस्कृति मन्त्री एवं अध्यक्ष हिमाचल कला संस्कृति एव भाषा अकादमी शिमला श्री शिवकुमार उपमन्यु और माननीय अध्यक्ष, विधान सभा, श्री टी०एस० नेगी एवं शिमला के जिलाधीश श्री महेन्द्र लाल जी उपस्थित थे। अकादमी के सचिव महोदय श्री एम०आर० ठाकुर जी ने मन्त्रीगण एवं कलाकारों का स्वागत करते हुए इस उत्सव के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला। माननीय शिक्षा मन्त्री एवं अध्यक्ष अकादमी श्री शिवकुमार उपमन्यु ने माननीय मुख्यमन्त्री श्री रामलाल ठाकुर एवं कलाकारों का स्वागत किया। उन्होंने बताया कि अकादमी द्वारा इस तरह का उत्सव पहली बार आयोजित किया गया है। उन्होंने कहा कि जन-जातीय क्षेत्र की लोक-कलाओं की बढ़ौतरी के लिए पूर्ण कदम उठाए जा रहे हैं। माननीय मुख्यमन्त्री श्री रामलाल ठाकुर जी ने कलाकारों को आशीर्वाद देते हुए कहा कि इन जनजातीय क्षेत्र के लोगों ने अभी तक अपनी कला व संस्कृति को सुरक्षित रखा है। उन्होंने अकादमी की गतिविधियों और नीतियों की प्रशंसा की।

उद्‌घाटन कार्यक्रम के पश्चात् विभिन्न दलों द्वारा अपने जिले के नृत्य प्रस्तुत किए गए। दर्शकों ने पूरे कार्यक्रम की खूब प्रशंसा की। अलग-अलग जिलों की वेश-भूषा के दर्शकों ने धूमधाम से दर्शन किए। कार्यक्रम में लाहुल, किन्नौर, चम्बा के गुज्जर एवं गद्दी नृत्य प्रस्तुत किए गए। गुज्जर पार्टी पहली बार मंच पर आई। इस पार्टी के कलाकारों में एक विशेष तरह का उत्साह

था। मिजोरम ये आए कलाकारों ने भी मंच पर नृत्य कार्यक्रम प्रस्तुत किया। उन्होंने दस बांस के डंडों में अपना नृत्य दिखाया। इस नृत्य की दर्शकों ने खूब प्रशंसा की। दिनांक २९ मार्च, १९८१ को समापन समारोह की अध्यक्षता माननीय शिक्षा, भाषा एवं संस्कृति मन्त्री एवं अध्यक्ष अकादमी श्री सिवकुमार उपमन्यु जी ने की। इन्होंने अपने भाषण में कहा कि काफी अधिक दर्शकों ने इस कार्यक्रम को देखा एवं सराहना की है। उन्होंने कहा कि इन जनजातीय क्षेत्रों की संस्कृति को सुरक्षित करने के पूरे प्रयास किए जा रहे हैं।

प्रलेखन कार्य :

दिनांक २९ से ३० मार्च, १९८१ तक आमन्त्रित दलों से उनके क्षेत्र की कलाओं और संस्कृति पर प्रलेखन कार्य किया गया। इन क्षेत्रों के वाद्य यन्त्रों, वेश-भूषा, आभूषण, जन्म, विवाह और मृत्यु आदि संस्कारों, मेले, देवी-देवता, लोक-नृत्य एवं नाट्यों और लोक-गीतों एवं धुनों का प्रलेखन कार्य किया गया।

वाद्य यन्त्रों के नाम, बनावट, लम्बाई, चौड़ाई, कब बजाया जाता है और उस पर बजाई जाने वाली धुनें इत्यादि पूर्ण विवरण लिखा एवं रिकार्ड किया गया। वेश-भूषाओं के विवरण में इनकी लम्बाई-चौड़ाई, बनावट, किस वस्तु का बना होता है, कैसे बनाया जाता है और कैसे पहना जाता है तैयार किया गया। आभूषणों में किस धातु का बना है, बनावट कैसी है, कहां और कैसे पहना जाता है एवं स्थानीय भाषा में किस आभूषण को क्या कहते हैं, इत्यादि विवरण तैयार किया गया। इसके इलावा जम्म, विवाह और मृत्यु संस्कारों, विभिन्न अवसरों पर मनाए जाने वाले उत्सव, देवी-देवताओं के नाम और उनके स्थान, लोक-नाट्य एवं नृत्यों के प्रकार, विभिन्न लोक-धुनों एवं गीतों की रिकार्डिंग, त्यौहारों और लोक-नीतों का विवरण लिखा एवं रिकार्ड किया गया।

स्वैच्छिक संस्थाओं की वित्तीय सहायता :

	संस्था का नाम	राशि
१.	हिम लोक मंच, शिमला	१५००·००
२.	शिल्पा प्रोड्क्शन, शिमला	७००·००
३.	लोक साहित्य परिषद् कांगड़ा, (हि०प्र०)	१०००·००
४.	फागली क्लब, शिमला	१०००·००
५.	कोटखाई निवासी सभा, शिमला	१०००·००
	कुल योग	५२००·००

तकनीकी सहायता :

	कलाकार/संस्था का नाम	सहयोग
1.	श्री शंकरलाल शर्मा बांसुरी वादक, आकाशवाणी, शिला	वेश-भूषा के रूप में सहयोग

सोमसी

पुस्तक समीक्षा

नाम पुस्तक : हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास ।
लेखक : डॉ० सुशील कुमार फुल्ल ।
प्रकाशक : बन्दना पब्लिशर्ज, निकट पुरानी कोतवाली, चौड़ा बाजार लुधियाना ।
पृष्ठ संख्या : १०४ ।
मूल्य : पच्चीस रुपये मात्र ।

अद्यावधि हिमाचल प्रदेश के हिन्दी साहित्य के मूल्यांकन का कोई प्रयास देखने में नहीं आया । इस दिशा में डा० फुल्ल का हाल ही में प्रकाशित ग्रन्थ हिमाचल का हिन्दी साहित्य का इतिहास मौलिक एवं महत्वपूर्ण प्रयास है । प्रस्तुत पुस्तक हिमाचली साहित्य कथा-यात्रा का वह प्रथम संस्मरण कहा जा सकता है, जिसकी प्रेरणा लेखक को प्राप्त वह पत्र था जिसमें हिमाचल की सम्प्रदायिक कविता विषय पर शोध पत्र आमन्त्रित रहा । महती शोध पीड़ा को सह कर इस इतिहास की रचना हुई । वह भी विकट परिस्थितियों में जहां न तो हिमाचली साहित्य से सम्बन्ध कोई आधार था और न दिशा यात्रा ।

आलोच्य साहित्येतिहास पांच विषयवस्तुनिष्ठ अध्यायों, कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक एवं एकांकी-विविध तथा परिशिष्ट संदर्भ ग्रंथ सूची में आवंटित है ।

हिमाचल की हिन्दी कविता :

हिमाचली काव्य यात्रा को विभिन्न काल-पड़ाओं में बांटा गया है । गुलेरी काल (सन् १९०४ से १९११ तक, अन्तराल काल सन् १९१२ से १९४७ तक, स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कविता सन् १९४८ से अब तक) आलोच्य काव्यकाल को पुनः भावपूर्ण शीर्षकों में बांटा गया है : (क) आधुनिक युग बोध का काव्य, (ख)) राष्ट्रवादी नैतिक काव्य, अन्य कवि तथा उनका काव्य ।

उपन्यास इतिहास खण्ड को 'उपन्यास' शब्द की व्याख्यात्मक विवेचना के बाद विभिन्न भावपूर्ण खण्डों में बांटा गया है ।

(क) रोमांसिक उपन्यास, (ख) सामाजिक राष्ट्रवादी उपन्यास (ग) विविध उपन्यास। इतिहासकार ने रोमांसिक उपन्यासों में उसी छत के नीचे, 'सैलानी' और 'कहीं कुछ और' के सैक्सी प्रेम की काफी विवेचना की है । वस्तुतः ऐसे उपन्यास मांसलता की गंध के प्रेम पीड़ा के सर्जक ही हैं। सामाजिक राष्ट्रवादी उपन्यासों में मस्तराम कपूर, किशोरी लाल वैद्य, गंगाराम राजी, हरदयाल मन्शाराम, शांताकुमार आदि के उपन्यासों की परिचयात्मक आलोचना की है । विविध उपन्यासकारों में अशोक सरीन, रमेश अरुण और विजेन्द्र दुसाज के नाम समाविष्ट हैं ।

कहानी इतिहास यात्रा :

हिमाचली हिन्दी कहानी के इतिहास विकास की विवेचना से पूर्व इतिहासकार ने कहानी की आवश्यकता एवं अनादिकाल से इसकी जिज्ञासा की बात की हैं। लेखक के अनुसार 'कल्पना' एवं विचार का मणिकांचन संयोग भारतीय कहानी की विशेषता रही है । भूमिका के अन्तर्गत ही

कहानी की सहजता और कहानी के बदलते तेवर को विभिन्न आकर्षक नामकरण चकाचौंध की बात उठाई है। यहां कहानी की सहजता कथ्य एवं शिल्प के सरलीकरण की बात शायद अपेक्षित रही है। लेखक ने कहानी की कहानी और हिमाचली कहानी के इतिहास विकास से पूर्व हिन्दी की प्रथम कहानी 'रानी केतकी की कहानी' के कथानक को कहकर कहानी के क्लाईमक्स और कौतूहलता का प्रश्न उठाया है ?

काल विभाजन :

(क) प्रथम चरण अथवा गुलेरी काल (सन् १९११ से १९३८ तक)
(ख) द्वितीय चरण अथवा यशपाल काल (सन् १९३९ से १९५८ तक)
(ग) तृतीय चरण अथवा प्रयोगवादी काल (सन् १९५९ से १९७० तक)
(घ) चतुर्थ चरण अथवा पुनर्जागरण काल (सन् १९७१ से अब तक)

प्रथम चरण पं० चन्द्रधर शर्मा गुलेरी की तीन कहानियों 'सुखमय जीवन, बुद्धु का कांटा, उसने कहा था' की विस्तृत आलोचना के बाद यह अध्याय यहीं विराम लेता है, क्योंकि विभिन्न साहित्यकारों के और इतिहासकारों के मत में इस काल की कोई और हिमाचली कहानी प्रकाश में नहीं आई है। हिमाचली कहानी के प्रयोगवादी काल के अन्तर्गत बर्फ के हीरे, सफेद प्रतिमा काले साये, जौहार के अक्षर आदि कहानी संग्रहों की व्याख्यात्मक आलोचना है। पुनर्जागरण काल के कहानी संग्रहों 'एक कथा परिवेष, युगों पुराना संगीत, सहज कहानियां, पगडंडियां, ज्योतिर्मयी, फासला, पहचान, अन्तरालों में घटता समय स्मृति' की एक-एक कहानी का परिचय संक्षिप्त और आलोचात्मक ढंग से किया गया है।

नाटक एवं एकांकी इतिहास खण्ड के अन्तर्गत रामकृष्ण कौशल, नरेन्द्र अरुण और काहनसिंह शिमलवी इत्यादि नाटक एवं एकांकीकारों के नाम समाविष्ट हैं।

पांचवें अध्याय में लेखक ने निबन्ध, समीक्षा, पत्रकारिता और बाल साहित्य के इतिहास, विकास की शोध-विवेचना की है। इस अध्याय को काल खण्डों में न बांट कर लेखक एवं रचना नामकरण के आधार पर कहा है। चन्द्रधर शर्मा गुलेरी, यशपाल, सन्तराम वत्स्य, मौलूराम ठाकुर, डॉ वंशीराम शर्मा, डॉ० मनोहरलाल, पराशर, नरेन्द्रनाथ, जसटा, शमी शर्मा के साहित्यिक शोध पर प्रकाश डाला है। अन्य निबन्ध लेखक और उनके आलोचक लेखों में वेदप्रकाश अग्नि, विजय सहगल, अनिलकिशोर प्रभृति विद्वानों की लम्बी पहचान दी है।

अपने मौलिक तेवर के कारण प्रस्तुत हिमाचली साहित्सेतिहास, पर्वतीय क्षेत्र के साहित्यक विकास कथा का सफल प्रयास कहा जा सकता है। हिन्दी साहित्य में हिमाचल की पहचान बताने में यह इतिहास-विकास ग्रन्थ काफी उपयोगी रह सकता है। इस पुस्तक का स्कूल, कालेज में पठन पाठन तो और भी अपेक्षित रहेगा। ग्रन्थ के अन्तिम अध्याय में वर्णात्मक आधार पर सन्दर्भ ग्रन्थों की सूची बड़ी महत्वपूर्ण है। ग्रन्थ की साज-सज्जा सुन्दर है, आवश्यकता इस बात की है कि इतिहास पर जो टिप्पणियां विभिन्न लेखकों, पाठकों और समीक्षकों द्वारा प्रकाश में लाई जाएं तदानुसार इस इतिहास का संशोधित संस्करण निकालने की आवश्यकता को बल दिया जाता है।

समीक्षक : अश्विनी अवस्थी,
गांव व डाकघर सुलह, तहसील पालमपुर,
जिला कांगड़ा [हिमाचल प्रदेश]

FORM IV

(See Rule 8)

1. *Place of Publication* ... Simla.

2. *Periodicity of Publication* ... Quarterly.

3. *Printer's Name* ... Shri Munshi Ram.
Nationality ... Indian.
(a) Whether a citizen of India ... Yes.
(b) If a Foreigner, the country of Or gin N A.
Address ... Naveen Printing Press,
49-A, Main Market, Bilaspur (H.P.)

4. *Publisher's Name* ... **Shri M R. Thakur.**
Nationality ... **Indian.**
(a) Whether a citizen of India ... **Yes.**
(b) If a Foreigner, the country of Origin **N.A.**
Address ... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Peach-Blossom-Cottage Simla-2.**

Editor's Name ... **Shri M.R. Thakur.**
Nationatity ... **Indian.**
(a) Whether a citizen of India ... **Yes.**
(b) If a Foreigner, the country of Origin **N.A.**
Address ... **Secretary, Himachal Academy of Arts, Culture and Languages, Peach-Blossom-Cottage Simla-2.**

Names and addresses of individuals who own the newspaper and are partners or shareholders holding more than one percent of the Total Capital **Himachal Kala, Sanskriti, Bhasha Academy, Peach-Blossom-Cottage Simla-2.**

I, M.R. Thakur, heraby declare that the particulars given above are true he best of my knowledge and belief.

(Sd.) M.R. Thakur,
Secretary.

H.A.A.C.L. आर०एन० 28271/75

1. निदेशक, शिक्षा विभाग, हि०प्र० द्वारा पत्राङ्क ई डी ऐन-एच (8)-6(3)1/75, 24 फरवरी, 1975 के अनुसार प्रदेश के समस्त कालेजों, पाठशालाओं व जिला पुस्तकालयों के लिए स्वीकृत।

2. प्रदेश की समस्त पंचायतों के लिए निदेशक, पंचायती राज विभाग, हिमाचल प्रदेश सरकार द्वारा स्वीकृत।

हिमाचल कला-संस्कृति-भाषा अकादमी, पीच ब्लाज़म काटेज शिमला-2 द्वारा प्रसारित तथा **नवीन प्रिंटिंग प्रेस', जिला बिलासपुर (हिमाचल प्रदेश)** द्वारा मुद्रित।